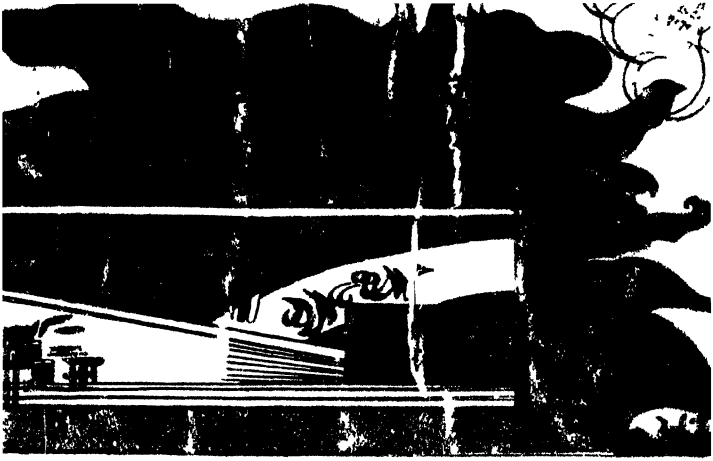


चीन का स्वाधीनता युद्ध

"वीर भोग्या वसुन्धरा"
इस संसार में पूर्ण पृथ्वी
को भोगने का अधिकार
केवल वीरों को प्राप्त है।

क्रान्ति ग्रन्थमाला का पहला ग्रन्थ

चीन का स्वाधीनता युद्ध

लेखक :—

श्री कृष्णचन्द्र विद्यालंकार

सम्पादक :—

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

प्रथमावृत्ति] १९३८ ई० [मूल्य १)

प्रकाशक :—
विजय पुस्तक भण्डार,
अर्जुन प्रेस,
देहली.

**
*

मुद्रक :
अर्जुन प्रेस,
श्रद्धानन्द बाज़ार,
देहली.

प्रारम्भिक वक्तव्य

क्रान्ति-ग्रन्थमाला का उद्देश्य हिन्दी पाठकों को संसार की वर्तमान और गुज़री हुई क्रान्तियों की कथा सुनाना है। यह जड़ और चेतन दोनों तरह का संसार गति और स्थिति इन दो असूलों पर चल रहा है। यदि केवल गति हो और स्थिति का अभाव हो जाय तो वर्तमान में कुछ भी दिखाई न दे। वर्तमान 'स्थिति' का परिणाम है, तो भविष्य 'गति' का, दोनों मिल कर इस भूत, वर्तमान और भविष्य में फैले हुए संसार का निर्माण करते हैं।

यदि गति और स्थिति दोनों ठीक अनुपात में मिले रहें तो एक आदर्श संसार की रचना हो सकती है, परन्तु दुर्भाग्यवश वैसा होता नहीं। नदी का जल गति का प्रतिनिधि है, और किनारा स्थिति का। जल न रहे तो नदी क्या, और यदि किनारा न रहे तो पानी बहने की जगह फैल कर सूख जाय। किनारा और जल दोनों के मिलने से नदी बनती है। इसी प्रकार यह संसार भी स्थिति और गति के मिश्रण से बनता है।

यदि नदी के किनारे सदा सुरक्षित रहें, और जल का प्रवाह सदा नियमित रूप से चलता रहे, तो सृष्टि के आरम्भ से प्रलय-काल तक नदी एक ही रूप में चलती रहे — परन्तु ऐसा नहीं होता। कभी किनारे की प्रधानता रहती है तो कभी जल की।

वर्ष का अधिक समय जल को किनारे की आधीनता में बिताना पड़ता है, परन्तु ज्यों ही वर्षा ऋतु आती है, जल का राज्य हो जाता है। वह किनारों से टकराता है, उन्हें तोड़ता है, उनका अंग भंग करके हुलिया बिगाड़ देता है। जब कभी बाढ़ आ जाती है, तब तो किनारों का कहीं पता ही नहीं रहता, पानी किनारों को नष्ट-भ्रष्ट करके अपना नया मार्ग बना लेता है। इसी का नाम क्रान्ति है।

जब तक किनारों में बंधा हुआ पानी बहता रहे, हम कहते हैं "पानी शान्ति से चल रहा है"। जब किनारे पानी में डूब जांय, तब हम कह सकते हैं, 'नदी में क्रान्ति आ गई है'। मनुष्य-समाज की भी यही दशा है। प्रायः मनुष्य समाज का प्रवाह समय के बने हुये किनारों में से होकर गुज़रता है। उसे शान्ति का समय कहते हैं, परन्तु जब मनुष्यों की भावनायें समय के डाले हुए बन्धनों से असन्तुष्ट होकर जोश में आ जाती हैं, मनोभावों में बाढ़ सी उत्पन्न हो जाती है और पानी किनारों को लांघ कर विस्तृत भूखण्ड पर विचरण करना चाहता है, तब हम कहते हैं, यह 'क्रान्ति' है।

कौन नहीं जानता कि यदि नदियों का पानी वर्ष में कुछ समय के लिए बाढ़ पर न आया करे, और सदा अपने परिमित कलेवर और मध्यगति से चलता रहे, तो नदियों का जीवन चिरस्थायी नहीं रह सकता और न नदियों की उपयोगिता ही रह सकती है। बढ़ी हुई नदी अपने मार्गों को साफ़ कर लेती है,

और रास्ते में आई रुकावटों को नष्ट-भ्रष्ट कर देती है। बढ़ती के समय ही नदी अपने किनारों पर उस मिट्टी को डाल जाती है, जो भूमि को उपजाऊ बना देती है। नदी की उपयोगिता वार्षिक क्रान्ति के कारण ही कायम रहती है। यदि वार्षिक क्रान्ति बन्द हो जाय तो नदी या तो रास्ते में सूख जाय, अथवा अन्यथा-सिद्ध हो जाय। सम्भव है, नदी का किनारा बाढ़ को बहुत बुरा समझता हो, उससे डरता हो और उसे एक आपत्ति मानता हो — परन्तु नदी के जीवन के लिए वह आवश्यक है। उसी प्रकार यह सत्य है कि देशों के शासक और जातियों के मठाधीश— क्रान्ति के नाम से कांपते हैं – उसे आफ़त समझते हैं और उसके मार्ग को रोकने का यत्न करते हैं — परन्तु जैसे किनारे के न चाहने से बाढ़ बन्द नहीं होती, इसी प्रकार शासकों या मठा-धीशों के न चाहने से क्रान्ति की गति नहीं रुक सकती। क्रान्ति जीवन का आवश्यक सिद्धान्त है। जो मनुष्य-समुदाय इस सिद्धांत की उपेक्षा करता है—वह नदी की ताजगी और शुद्धता को छोड़ कर जौहड़ की सड़ांद और अपवित्रता को निमन्त्रण देता है।

इस ग्रन्थमाला का उद्देश्य पाठकों को संसार की भूत और वर्तमान क्रान्तियों की कहानी सुनाना है। क्रान्ति कई रूपों में प्रगट होती है। मानसिक, सामाजिक और राजनीतिक, सभी क्षेत्रों में समय समय पर क्रान्ति प्रादुर्भूत होती है, परन्तु क्रान्ति की यही विशेषता है कि वह प्रायः सीमाओं का उल्लंघन कर जाती है, एक क्षेत्र में प्रारम्भ होकर दूसरे क्षेत्रों में फैल जाती

है। अधिकतर देखा गया है कि मानसिक क्रान्ति सामाजिक क्रान्ति के रूप में परिणत होकर अन्त में राजनीतिक क्रान्ति बन जाती है। यही कारण है कि बाह्य संसार को किसी देश की क्रान्ति का पता तभी चलता है, जब उसका राजनीतिक रूप प्रगट हो जाता है।

चीन की क्रान्ति भी, जिस का इतिहास इस ग्रन्थमाला के प्रथम ग्रन्थ में सुनाया गया है, मूलतः मानसिक क्रान्ति ही थी। मानसिक क्रान्ति ने सामाजिक क्रान्ति को जन्म दिया और समय पाकर वही राजनीतिक क्रान्ति के रूप में प्रगट हुई। अभी वह क्रान्ति का सिलसिला चल रहा है, क्रान्ति जारी है। चीन का जापान से संघर्ष उस क्रान्ति की किताब का एक अध्याय-मात्र है।

वर्तमान पुस्तक में लेखक ने चीन की क्रान्ति का स्वाधीनता के लिए चेष्टा के रूप में वर्णन किया है। भारतवासियों के लिए चीन की क्रान्ति का यह रूप बड़ा महत्वपूर्ण है, क्योंकि दोनों देशों में बहुत सी समानतायें हैं। दोनों देश विशालाकार हैं, दोनों देशों के निबासियों में पूर्वीयता कूट-कूट कर भरी हुई है, दोनों के इतिहास बहुत उज्ज्वल हैं। पश्चिम के निवासियों ने उन में जिस प्रकार दखल किया, उसमें भी बहुत सी समानता है। चीन का सम्राट् शियन लुंग इंगलैंड के बादशाह को जिस तिरस्कारपूर्ण दृष्टि से देखता था, मुग़ल बादशाह जहांगीर की भी अपने दरबार में आये हुये अंग्रेज़ राजनीतिज्ञों के प्रति वही दृष्टि

थी। जिस विधि से भारतवर्ष में विदेशी व्यापारियों और पादरियों ने प्रवेश किया, उसी विधि से उन्होंने चीन में भी हाथ पांव फैलाये। यहां तक तो दोनों देशों में समानता रही, इसके आगे दोनों के मार्ग अलग हो गये। जहां भारतवर्ष विदेशियों के आक्रमण के आगे बिलकुल अशक्त हो गया — वहां चीन ने थोड़ी बहुत जीवन-चेष्टा जारी रखी, जो समय के साथ साथ अधिक बलवती होती गई, और आज हम यह दृश्य देख रहे हैं कि लगभग सारा चीन एक होकर विदेशी पंजे से छूटने की भरसक चेष्टा कर रहा है। इन पृष्ठों में चीन की जीवनचेष्टा का इतिहास अंकित है। आशा है, पाठक उसे उत्सुकता और रुचि से पढ़ेंगे।

क्रान्ति-ग्रन्थमाला के अगले ग्रन्थ क्रमशः पाठकों के हाथों में पहुंचते रहेंगे। यह ग्रन्थमाला उन्नतिशील सामयिक साहित्य का एक आवश्यक अंग हो — हमारी यही हार्दिक इच्छा होगी। क्रान्ति-ग्रन्थमाला का दूसरा ग्रन्थ सम्भवतः जर्मनी के सम्बन्ध में होगा।

—इन्द्र

* विषय-सूची *

* भूमिका *

यों तो संसार के समस्त साम्राज्यवाद की कहानियां संसार के इतिहास का सबसे करुण अध्याय है, लेकिन चीन की कहानी अन्य सब कहानियों से भी एक विशेषता रखती है। साम्राज्यवाद का शिकार होने वाले देशों में चीन जितना विशाल राष्ट्र और कोई नहीं। ४३ लाख वर्गमील और ४८ करोड़ जनसंख्या का महान् राष्ट्र किस तरह जापान, रूस, ब्रिटेन, फ्रांस, अमेरिका आदि सभी साम्राज्यलोलुप राष्ट्रों की रंगस्थली बना, किस तरह उन्होंने उसे बाह्य रूप से पराधीन न करते हुए भी उसके आर्थिक व राजनैतिक संगठन को अपनी मुट्ठी में कर लिया, किस तरह उन्होंने इतने बड़े राष्ट्र की अत्यन्त प्राचीन और सभ्य जनता को जबर्दस्ती अफीम खिला कर निस्तेज, आलसी और काहिल बना दिया, यह सब कहानी अत्यन्त करुण है। लेकिन इसके साथ ही एक और कहानी भी है और वह है चीनी जनता की आन्तरिक और बाहरी गुलामी से मुक्त होने की वीर कथा। चीन एशिया का पहला राष्ट्र है, जिसने निरंकुश मंचू राजतन्त्र को उखाड़ कर प्रजातन्त्र की स्थापना की। इसी से चीनी जनता सन्तुष्ट नहीं हो गई, उसे संसार की सबसे प्रबलतम अनेक शक्तियों से एक साथ टक्कर लेनी पड़ी और अब तक उसका यह स्वाधीनता-युद्ध जारी है। इस युद्ध से उसे कहीं से (रूस से भी नहीं, जैसा कि

कुछ भारतीय समझते हैं) वास्तविक सहायता प्राप्त नहीं हुई। उसे अपने पैरों पर खड़े होकर ही अनेक शक्तियों के साथ मोर्चा लेना पड़ा है।

भारत और चीन में अनेक समानताएं हैं। हम भारतीय अपने इस निकटतम पड़ोसी महान् राष्ट्र के स्वाधीनता-संग्राम से बहुत शिक्षा ले सकते हैं। इसलिए उस पर एक नज़र डाल लेनी आवश्यक है। प्रस्तुत पुस्तक इसी दिशा में एक छोटा-सा प्रयत्न है। वस्तुतः यह आश्चर्य की बात है कि हम जितना इंग्लैंड, इटली, रूस, व जर्मनी आदि के बारे में जानते हैं, उसका सौवां हिस्सा भी अपने निकटतम पड़ोसी चीन के बारे में नहीं जानते। आज, जबकि अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के कारण हमें संसार भर के देशों का ज्ञान आवश्यक है, अपने निकटतम एक महान् राष्ट्र का ज्ञान तो और भी अधिक अनिवार्य है। मेरा विश्वास है कि इस कमी को यह पुस्तक एक सीमा तक पूर्ण करने में कुछ न कुछ सहायक अवश्य होगी।

प्रस्तुत पुस्तक मैं न लिख पाता, यदि माननीय पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति की प्रेरणा न होती। इसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूं।

पुस्तक की त्रुटियों की ओर यदि विद्वान् मित्र मेरा ध्यान खींचेंगे, तो मैं उनका आभार मानूंगा।

७ जुलाई १९३८
चीन जापान युद्ध की सालगिरह

कृष्णचन्द्र

चीन के उन लाखों अबोध दुधमुंहे शिशुओं
की स्मृति में, जो साम्राज्यवाद से
अंधे हुए जापान की भयंकर
ज़हरीली बम या गैस की
वर्षा से तड़पते-तड़पते
संसार से कूच
कर गये

नवीन चीन के जन्मदाता



डा० सनयात सेन

पहला अध्याय

अतीत पर एक दृष्टि

सन् १७९२ ई० में चीन के सम्राट् शियन लुंग ने इंग्लैंड के बादशाह जार्ज तीसरे को निम्नलिखित पत्र लिखा था :—

"ऐ बादशाह, तू बहुत से समुद्रों की सीमा से परे रहता है, फिर भी हमारी सभ्यता से कुछ लाभ उठाने की नम्र इच्छा से प्रेरित होकर तूने एक राजदूत मण्डल भेजा है, जो बाइज्जत तेरी अर्जी लेकर आया है। ·········अपनी भक्ति का सबूत देने के लिए तूने अपने देश में बनी हुई कुछ वस्तुयें भी भेंट के रूप में भेजी हैं। तूने अपने प्रार्थनापत्र में जो आदरपूर्ण विनम्रता दिखाई है, वह प्रशंसा के योग्य है। ······

"सारी दुनिया पर राज्य करते हुए मेरे सामने केवल एक ही मकसद रहा है यानी आदर्श शासन कायम रखना और राज्य के प्रति अपने कर्तव्यों पर अमल करना। आश्चर्यभरी और बेश-कीमती चीजों में मुझे कोई रुचि नहीं है। मुझे ...... तेरे देश की बनी हुई चीजों की जरूरत भी नहीं है। ऐ बादशाह, तुझे मेरी भावनाओं का आदर करना व भविष्य में इससे भी ज्यादा श्रद्धा व राजभक्ति दिखलानी चाहिये, ताकि तू सदा हमारे राज्य-सिंहासन की छत्रच्छाया में रहकर अपने देश के लिए शान्ति व सुख प्राप्त करता रहे।

"डर से कांपते हुये मेरी आज्ञाओं का पालन कर और लापरवाही मत दिखा।"

इसके भी २४-२५ साल बाद ब्रिटिश राजदूत लार्ड एम-हर्स्ट से चीनी सम्राट् ने मुलाकात करने से इसलिये इन्कार कर दिया कि वह चीन की 'कोतो' विधि के अनुसार सम्राट् को दण्डवत् प्रणाम करने के लिये तैयार न हुआ था। इन दो घट-नाओं से प्रतीत होता है कि चीन उन दिनों कितना शक्तिशाली था। वस्तुतः चीन का प्राचीन इतिहास अत्यन्त गौरवपूर्ण है।

भारत की भांति चीन भी पृथ्वी के प्राचीनतम सभ्य देशों में से एक है। भारत के साथ अत्यन्त प्राचीन काल से उसका सम्बन्ध रहा है। ऐतिहासिकों के मतानुसार पिछले ५००० वर्ष का चीन-इतिहास प्राप्त होता है। इस इतिहास से ज्ञात होता है कि चीन अत्यन्त उन्नत देश था। हसिया, शैंग और चाऊ

राजवंशों के सैकड़ों वर्ष राज्य करने के बाद चीन में चिन राजवंश गद्दी पर बैठा। यह वंश सम्राट् अशोक का समकालीन था। इसी वंश के कारण यह देश 'चीन' कहलाया। हन और तग वंश के जमाने में भी चीन ने बहुत उन्नति की। सातवीं और आठवीं सदी में चीन सम्भवतः दुनिया का सब से ज्यादा सभ्य, खुशहाल और सुशासित देश था। अनेक महत्त्वपूर्ण आविष्कार, जो सैकड़ों सालों बाद यूरोप में हुए थे, चीन में सैकड़ों बरस पूर्व हो चुके थे। कागज और छापने की कला, बारूद, तथा नोट करेंसी आदि का आविष्कार सबसे पहले चीन में ही हुआ था। दिग्दर्शक यंत्र का ज्ञान भी चीनियों को बहुत पहले से था। रेशम के कीड़े से रेशम निकालने और कपड़े बनाने का आविष्कार भी चीन में हुआ था। झूलता हुआ पुल २०६ ई० पू० में बन चुका था। चीन की १५०० मील लम्बी दीवार आज भी संसार के प्रधान सात आश्चर्यों में से एक समझी जाती है। खेती, नगरनिर्माण तथा व्यापार व्यवसाय सभी दृष्टि से चीन उन्नत राष्ट्र था। राजनैतिक दृष्टि से भी हम चीन को बहुत उन्नत पाते हैं। सरकारी नौकरी के लिये प्रतिस्पर्धात्मक परीक्षा की प्रथा का उल्लेख सिर्फ चीन के ही प्राचीन इतिहास में मिलता है। १५६ ई० में जनसंख्या होने का उल्लेख भी मिलता है। लोगों का सामाजिक, सांस्कृतिक और दार्शनिक धरातल भी बहुत ऊंचा था। कन्फ्यूशस की विचारधारा सदियों से चीनियों को सांस्कृतिक उन्नति का पाठ पढ़ा रही थी। बौद्ध

धर्म के प्रवेश ने भी चीन के सामाजिक जीवन पर गहरी छाप डाली थी। संग राजवंश के समय भी चीन अत्यन्त उन्नत राष्ट्र था। मंगोलों के युवान राज वंश ने संग वंश को परास्त कर स्वयं चीन का शासन अपने हाथ में लिया, लेकिन मिंग वंश के हांग वू नामक नेता ने १३६८ ई० में उसे परास्त कर दिया। १६४४ ई० तक मिंग राजवंश कायम रहा। इस काल में चीनियों को अपनी प्रतिभा के विकास का पूरा अवसर मिला। जापान ने भी कुछ अरसे तक चीन की अधीनता स्वीकार की। कोरिया, सुमात्रा और जावा वगैरः द्वीपों व इण्डोचाइना से चीन को कर मिलता था। चीन की आर्थिक उन्नति भी खूब हुई।

इस काल का सांस्कृतिक इतिहास और भी उल्लेखनीय है। साहित्य, कला, दौलत, उद्योग धन्धों और सभ्यता में चीन यूरोप से कहीं आगे था। लेकिन चीन का भी भाग्यचक्र पलटा और सत्रहवीं सदी के बीच में मंचुओं ने चीन को जीत लिया। यह मंचू वंशी यद्यपि विदेशी थे, तथापि ये चीन की संस्कृति अपना कर चीनी ही बन गये थे। इनके समय भी चीन खूब उन्नति करता रहा। मंचू राजा कांग ही ६१ वर्ष तक ऐसे साम्राज्य का स्वामी रहा, जो अपने जमाने की दुनिया के किसी भी साम्राज्य से बड़ा और ज्यादा आबाद था। इसी बादशाह के पोते शियन लुंग ने ब्रिटिश सम्राट् को उपर्युक्त अभिमानपूर्ण पत्र लिखा था। शियनलुंग के साम्राज्य में मंचूरिया, मंगोलिया, तिब्बत और तुर्किस्तान शामिल थे। कोरिया, अनाम, स्याम और बरमा उसकी

सत्ता को मानते थे। १७९६ ई० में शियन लुंग का देहान्त हुआ।

रूस को छोड़ कर चीन संसार के सब देशों में बड़ा है। उत्तर में साइबेरिया से लेकर दक्षिण में उष्ण कटिबन्ध तक और पश्चिम में अफ़गानिस्तान से लेकर पूर्व में पीले समुद्र (प्रशान्त महासागर) तक चीन फैला हुआ है। इसका क्षेत्रफल करीब ४३ लाख वर्ग मील है अर्थात् समस्त यूरोप से कुछ बड़ा और भारत से करीब दुगुना। चीन की आबादी लगभग ४८ करोड़ है अर्थात् संसार की समस्त जनसंख्या का एक चौथाई भाग चीन में बसता है। यह १८ प्रान्तों में बंटा हुआ है।

संसार के इतिहास में जो बड़े बड़े दुःखान्त आश्चर्य हुए हैं, उनमें चीन का पतन बहुत महत्वपूर्ण है। इतना शक्तिशाली उन्नत और सम्पन्न राष्ट्र किस तरह एकाएक गिर कर विदेशियों की क्रीडास्थली बना, यह चीन के इतिहास में सब से अधिक करुणापूर्ण अध्याय है और इसकी चर्चा हम आगामी अध्याय में करेंगे।

दूसरा अध्याय

विदेशियों की लूट-खसोट

यों तो बहुत प्राचीन समय से चीन का अन्य राष्ट्रों से सम्बन्ध चला आता था, परन्तु चीन की आन्तरिक परिस्थिति मे सम्बद्ध सन्धि करने वाला सर्व प्रथम पश्चिमी राष्ट्र रूस था। १६८९ ई० में मंचूरिया और साइबेरिया की सीमा आरगुन नदी तक निश्चित करने, दोनों राष्ट्रों की प्रजा को एक दूसरे से व्यापार करने तथा एक दूसरे देश में आने जाने का अधिकार देने के लिए रूस के जार महान् पीटर और चीनी सम्राट् कांग ही (१६६१-१७२२) में सन्धि हुई। वस्तुतः कांग ही ईसाई

व्यापारियों व मिशनरियों के प्रति काफी उदार था। उसे उनके स्वभाव का परिचय न था। वह विदेशों के साथ व्यापार बढ़ाने की सदा कोशिश करता था। उसने विदेशियों के लिये चीन के सब बन्दरगाह भी खोल दिये थे। लेकिन उसे जल्दी ही मालूम हो गया कि योरप के व्यापारी और प्रचारक चीन में सदिच्छा से नहीं आये। ईसाई पादरी चीन को जीतने के लिये अपने अपने देश की सरकारों के साथ षड्यन्त्र करते रहते हैं। कैण्टन के फौजी अफसर की रिपोर्ट से सम्राट् कांग ही के इस सन्देह की और भी पुष्टि हुई। इस रिपोर्ट में बतलाया गया था कि फिलिपाइन और जापान में योरुप की सरकारों और उनके सौदागरों व प्रचारकों के बीच में कितना घनिष्ठ सम्बन्ध था। इसलिए इस अफसर ने यह सिफारिश की थी कि हमलों और विदेशियों की साजिशों से साम्राज्य को बचाने के लिए विदेशी व्यापार पर पाबन्दी लगाई जाय और ईसाई धर्म के प्रचार को रोका जाय।

चीन की बड़ी राज्यसभा ने इस रिपोर्ट को स्वीकार कर लिया। इसकी आज्ञानुसार सम्राट् कांग ही ने विदेशी व्यापार और पादरियों के प्रचार पर सख्त पाबन्दी के हुक्म जारी कर दिये, लेकिन सब तरह की पाबन्दियों के होते हुए भी विदेशी व्यापार बराबर बढ़ रहा था। रूस ने तो चीनी सम्राट् से किसी तरह मिल कर बहुत सी सुविधाएं भी प्राप्त कर ली थीं। १७२७ ई० की सन्धि के अनुसार तीन वर्ष में करीब दो सौ रूसी व्यापारियों को बिना कर दिये पेकिंग में घुसने की आज्ञा

भी मिल गई। इस तरह रूस तो व्यापार बढ़ा रहा था, लेकिन इंग्लैगड के व्यापार पर अब भी पाबंदी लगी थी और व्यापार का सब से बड़ा हिस्सा था भी ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथ में, जिसने कैगटन तक पैर फैला रखे थे। इसलिए पाबंदियां भी इसी को सब से ज्यादा अखरती थीं। इन पाबंदियों को दूर कराने के लिए ब्रिटिश सरकार ने १७६२ ई० में लार्ड मेकार्टनी के नेतृत्व में एक डैपुटेशन चीन भेजा, परन्तु उसे कोई सफलता न मिली। इस डैपुटेशन को चीन की ओर से जो जवाब दिया गया, वह पुस्तक के प्रारम्भ में हम लिख आये हैं।

अफ़ीम युद्ध

इसी बीच पाबन्दियों के होते हुए भी अफ़ीम का व्यापार निरंतर बढ़ रहा था। अंग्रेज व्यापारी खूब पैसा कमा रहे थे, लेकिन चीनियों का स्वास्थ्य और नैतिक आदर्श लगातार गिर रहा था। अफ़ीम के नशे ने सारे राष्ट्र को अफ़ीमची और नपुंसक बनाना शुरू किया। देश का धन भी चौपट हो रहा था, स्वास्थ्य और चरित्र भी। शहर शहर में चगडूखाने खुल गये। केवल एक निंगपो शहर में २७०० चगडूखाने थे। लोगों में यह व्यसन इतना बढ़ गया कि बालबच्चों तक को बेच कर अफ़ीम खरीदने के उदाहरण मिलने लगे। सन् १६८४ ई० में २०० पेटी से अधिक अफ़ीम चीन न जाती थी, लेकिन १८२० ई० में पेटियों की संख्या १७००० तक पहुंच गई। सन् १८०० ई० में

चीन सरकार ने अफ़ीम का आना रोक दिया था, लेकिन इसका भी कोई लाभ न हुआ। कस्टम अधिकारियों को रिश्वतें दे दे कर यह व्यापार गुप्तरूप से और भी ज्यादा बढ़ता रहा। तब आखिरकार चीन सरकार को कुछ सख्त कार्रवाही करनी पड़ी। इसकी रोक थाम के लिए लिन सी हो नामक अधिकारी को विशेषाधिकार दिये गये। उसने अफीम-व्यापार के मुख्य केन्द्र कैण्टन में आकर तमाम विदेशी व्यापारियों को आज्ञा दी कि अफीम का जितना भी स्टाक उनके पास है, वे शीघ्र ही उसके पास जमा करा दें। पहले विदेशी व्यापारियों ने उसकी आज्ञा पर ध्यान न दिया। इस पर लिन ने उन्हें उनकी फैक्टरियों में बन्द कर दिया और बाहर से उनके पास रसद आना रोक दिया। आखिर उन्हें घुटने टेकने पड़े और दो एक दिन में ही २०००० पेटियां, जिनका मूल्य २० लाख पौण्ड था, उसके पास जमा हो गईं। यह सब चोरी से चीन में पहुच चुकी थीं। लिन ने वे सब पेटियां समुद्र में फिकवा दीं।

लिन बहुत योग्य, सच्चा और ईमानदार था। उसने जो कुछ किया, उसे करने का अधिकार था, लेकिन शायद वह यह भूल गया था कि चीन के पास वह बल न था, जिसके जोर पर वह यह कार्य कर सकता। आत्म-सम्मान के नाम पर अंग्रेजों ने नवम्बर १८३९ में चीन से लड़ाई छेड़ दी। यह युद्ध, जिसे "अफीम का युद्ध" कहते हैं, तीन साल तक चला। कैन्टन और दूसरी जगह की नाकेबन्दी करने वाले ब्रिटिश जंगी बेड़ों के कारण

चीन सरकार को सफलता न मिली। आखिर चीन को झुकना पड़ा। अगस्त १८४२ ई० में नानकिंग की सन्धि हुई। यह पहली पराजय थी, जिसने चीन की कमजोरी को इतने नग्न-रूप में यूरोप के सामने रक्खा। इस सन्धि के अनुसार कैन्टन, अमाय, फूचाऊ, निंगपो और शंघाई नामक बन्दरगाह विदेशी व्यापार के लिये खोल देने पड़े। इन स्थानों में विदेशियों को रहने और अपनी कोठियां स्थापित करने का अधिकार भी दिया गया। चीन-स्थित ब्रिटिश नागरिकों के मुकदमे आदि का अधिकार भी चीनी अदालतों को न रहा। हांगकांग टापू पर भी अंग्रेजों ने कब्जा कर लिया और जो अफीम नष्ट की गई थी, उसका मूल्य तथा लड़ाई का खर्च करीब ६३ करोड़ रुपया भी इंगलैंड को देना तय किया गया। चीन-सम्राट् ने महारानी विक्टोरिया के नाम विनय-पूर्ण पत्र लिखा। इसकी भाषा ५० साल पूर्व लिखे गये शियन लुंग के पत्र से बिलकुल भिन्न थी।

अन्य राष्ट्र

पश्चिम की साम्राज्यवादी शक्तियों के साथ चीन की विपत्तियों का यह प्रारम्भ था। चीन के अन्दर चीन सरकार से भिन्न दूसरी ताकतों की सरकार कायम होने का यह पहला उदाहरण था। नानकिंग की सन्धि ने ब्रिटेन के लिये चीन के दरवाजे खोल दिये। लेकिन एक बार दरवाजा खुलते ही अन्य अनेक राष्ट्र भी चीन में घुस आये। फ्रान्स और संयुक्तराष्ट्र अमेरिका के साथ भी

व्यापारिक सन्धियां हुई और उनके लिये भी पांचों बन्दरगाह खोले गये। कुछ अन्य राष्ट्रों ने भी बाद में ये अधिकार प्राप्त कर लिये।

ईसाई पादरी

लेकिन चीन के लिये विदेशी व्यापार से भी अधिक खतरनाक थे ईसाई धर्म के पादरी, जिन्हें सन्धि के अनुसार चीन सरकार को अपने देश में धर्म प्रचार की इजाजत देनी पड़ी। बाद में चीन पर जितनी आफतें आईं, प्रायः उन सब का कुछ न कुछ कारण था ईसा के प्रेमधर्म के प्रचारक ये पादरी। "इनका बर्ताव निहायत गुस्ताखाना और भड़काने वाला था। लेकिन विदेशी होने के कारण चीनी अदालतों में इनपर मुकदमा न चलाया जा सकता था। फिर इन्होंने कुछ समय बाद यह भी मांग पेश की कि ईसाई चीनियों पर भी चीन की अदालतें मुकदमा नहीं चला सकतीं। गांव वालों को ये ईसाई पादरी और उनके नये शिष्य भड़काते रहते थे। यदि कभी गांव वालों ने क्रोध में आकर किसी पादरी की हत्या कर डाली, तब उनकी पीठपर रहने वाली साम्राज्यवादी सरकार आ धमकती और उनके हरजाने के नाम पर रुपया वसूल करती, अनेक शहरों पर अधिकार कर लेती या कुछ खास रिआयतें, जिनका किसी भी तरह समर्थन नहीं किया जा सकता, प्राप्त कर लेती।" पिछले ५० सालों के इतिहास में यह घटना बार २ दुहराई गई है। सर जोन वुडरफ ने इसी प्रकार की घट-

नाओं को देखते हुये लिखा है—"धर्म को राज्य बढ़ाने और धन कमाने का साधन बनाना एक ऐसी नीचता है, जो शायद हमारे राजनैतिक और व्यापारिक काल के लिए ही सुरक्षित रखी गई थी।" चीन वालों के दिमाग में यह बात घर कर गई थी कि पहले मिशनरियों का आना, फिर जंगी जहाजों की पहुंच और उसके बाद जमीन हड़पना।

दूसरा अफीम युद्ध

चीन सरकार की दब्बू नीति, लोगों की आर्थिक स्थिति के निरन्तर ह्रास और विदेशियों के बढ़ते हुये प्रभाव तथा ईसाई पादरियों के खिजाने वाले अपमानपूर्ण व्यवहार से चीन की जनता में असन्तोष की आग बढ़ रही थी। १८५३ ई० के करीब हुंग नामक नेता ने इसका लाभ उठाते हुए मंचू सरकार के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। उसे विद्रोह में आश्चर्यजनक सफलता मिली। चीन सरकार को उसे दबाने में अपनी सारी शक्ति लगा देनी पड़ी। इधर यूरोपियन शक्तियां और विशेष कर ब्रिटेन अभी तक जो कुछ चीन से छीन चुके थे, उससे सन्तुष्ट न थे। वे कुछ और भी लेने की ताक में थे। चीन सरकार को विद्रोह में लगा देख कर वे लड़ाई का कोई बहाना ढूंढने लगे। अफीम का व्यापार यद्यपि पिछले युद्ध के बाद से गैरकानूनी मान लिया गया था, तथापि बड़े जोरों से जारी था। १८५६ ई० में एक ऐसी ही चीनी नाव पकड़ी गई, उस पर के १२ चीनी भी गिरफ्तार कर लिये

गये। ब्रिटिश दूत ने इस मौके को हाथ से न जाने देना चाहा। उसने मांग पेश की कि उस नाव को पकड़ने का हरजाना दिया जाय, क्योंकि उस पर भी अंग्रेजी झण्डा लहरा रहा था। मजे की बात यह कि झण्डे के परवाने की मियाद गुजर चुकी थी। चीनी अफसरों के इन्कार करने पर युद्ध घोषणा कर दी गई।

इस बार फ्रांस ने भी उसका साथ दिया, क्योंकि लोगों को विद्रोह करनेके लिये उभाड़ने के अपराध में चीनी अधिकारियों ने एक फ्रांसीसी पादरी को प्राणदण्ड देने का साहस किया था। चीन फिर हारा — दरअसल वह लड़ा ही नहीं, वह अपने विद्रोह दमन में व्यग्र था — और सन् १८५८ ई० में उसे टीन्टसिन की सन्धि करनी पड़ी। इस लूट में हिस्सा बांटने के लिये रूस और अमेरिका भी सन्धि के समय आ कूदे। इस सन्धि के अनुसार कुछ और बन्दरगाह भी विदेशी व्यापार के लिये खोल दिये गये। पेकिंग में ब्रिटिश राजदूत रखना चीन ने मान लिया। यांगत्सी नदी के मार्ग से व्यापार करने तथा चीन के भीतर आने जाने का अधिकार भी अंग्रेजों को दिया गया और इस बात का आश्वासन भी दिया गया कि भविष्य में पादरियों को धर्मप्रचार से रोका न जायगा। इस दूसरे अफीम युद्ध में चीन सरकार को अफीम के व्यापार की भी स्वीकृति देनी पड़ी। युद्ध की क्षति-पूर्ति के नाम पर ८० लाख टेल (एक टेल= करीब सवा दो रुपये) देने पड़े। इस तरह चीनियों को जबर्दस्ती अफीम का आदी बनाया गया। जार्ज लिंच ने 'दी वार आफ

सिविलाइजेशन' में ठीक ही लिखा है कि—"चीन वाले अफीम के उपयोग से बिलकुल अनभिज्ञ थे। भारत से अफीम ले जाकर यूरोपीय व्यापारियों ने उसका वहां प्रचार किया और जब चीनियों ने उसका आयात रोकने की चेष्टा की, तब यूरोपियनों ने युद्ध छेड़ दिया! युद्ध का कारण यह था कि अफीम के व्यापारी चाहते थे कि चीन वालों को अफीम पीनी ही चाहिये, चाहे इससे राष्ट्र के नवयुवकों की जीवन-शक्ति क्यों न क्षीण होती जाय।"

दूसरा अफीम-युद्ध यहीं समाप्त नहीं हुआ। सन्धि पर अन्तिम रूप से हस्ताक्षर करने के लिए एक साल बाद जब विदेशी राजदूत पेकिंग आने लगे, तो चीन सरकार ने उनसे प्रार्थना की कि विद्रोहियों ने पीको नदी पर अधिकार कर रखा है, इसलिए अच्छा हो कि स्थल मार्ग से आवें, ताकि विद्रोही उन्हें चोट न पहुंचा सकें। अमेरिका इसे मान गया। लेकिन लड़ाई का छोटे से छोटा मौका तलाश करने वाले ब्रिटेन व फ्रांस ने उसकी यह उचित प्रार्थना भी स्वीकार न की। वे जबर्दस्ती नदी में होकर आने लगे। विद्रोही चीनियों ने उन्हें आने न दिया और उन पर गोलाबारी शुरू कर दी। इससे दोनों सरकारों ने उत्तेजित होकर जो काण्ड किया, वह बहुत भीषण और रोमांचकारी था। पं० जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में "१८६० ई० में पेकिंग के प्राचीन नगर पर उन्होंने धावा बोल दिया और तबाही, बरबादी, लूट शुरू हो गई। नगर की सब से अद्‌भुत

इमारत (ग्रीष्म भवन) भी जला दी गई। यह भवन चीन के सर्वोत्कृष्ट अमूल्य साहित्य और कला के रत्नों से परिपूर्ण था। पीतल और कांसे की सुन्दर सुन्दर मूर्तियां, चीनी मिट्टी के अद्भुत और बढ़िया बर्तन, हस्त लिखित दुर्लभ पुस्तकें और चित्र तथा अन्य कलापूर्ण कृतियां, जिनके लिए चीन हजारों वर्षों से प्रसिद्ध था, वे सब इस महल में रखी हुई थीं। सभ्यता का दावा करने वाले जाहिल और हूश अंग्रेज व फ्रांसीसी सिपाहियों ने इन बहुमूल्य वस्तुओं को खूब लूटा और कई दिनों तक जलती रहने वाली भयंकर होलियों में झोंक झोंक कर राख कर दिया।"

इसके बाद कुछ और भी शर्तें चीन पर लादी गईं। कर्ज और युद्ध का खर्च वसूल करने के लिए शंघाई में विदेशी अफसरों की मातहती में एक कस्टम विभाग खोलना पड़ा। इसका नाम रखा गया 'शाही समुद्री कस्टम विभाग'।

रूस भी

इधर इंगलैंड और फ्रांस चीन को दबा कर लूट खसोट कर रहे थे, उधर रूस ने उत्तर में हाथ पैर बढ़ाने शुरू किये। तरह २ की चालें चल कर व युद्ध की धमकी देकर उसने चीन के उस हिस्से पर अधिकार कर लिया, जो आमूर नदी के उत्तर तथा असूरी नदी के पूर्व में था और जो सदा से चीन के साम्राज्य का एक भाग रहा था। इससे रूस का राज्य ब्लाडीवास्टक तक फैल गया और उसे वह बन्दरगाह मिला, जो सामरिक और

व्यापारिक दोनों दृष्टियों से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वस्तुतः रूस को एक ऐसे बन्दरगाह की जरूरत थी, जहां का पानी सरदी में भी जम कर बरफ न बन जाता हो। व्लाडीवास्टक में साल के अधिकांश समय जहाज बिना किसी बाधा के आ जा सकते हैं। यहीं तक उसने बस न की। जब चीन सरकार चीनी तुर्किस्तान के बलवे को शान्त करने के प्रयत्न में लगी थी, रूस ने अपनी सेनायें भेज कर इली के प्रान्त पर भी चुपके से कब्जा कर लिया। मंगोलिया में भी कुछ विशेषाधिकार रूस ने छीन लिये। तीन साल तक के युद्ध और मूर्खतापूर्ण विनाश के बाद भी इंगलैण्ड और फ्रांस जितना फायदा न उठा सके थे, उससे कहीं ज्यादा रूस ने बहुत मजे में प्राप्त कर लिया।

यह सब देख कर इंगलैण्ड का लालच और भी बढ़ा। ब्रिटेन के परराष्ट्र विभाग का एक अधिकारी चीन में कहीं लुटेरों द्वारा मारा गया। बस, इंगलैण्ड को बहाना मिल गया। चीन सरकार ने मारने वाले ११ चीनी जंगलियों को फांसी की सजा भी दे दी, लेकिन अंग्रेज तो न्याय नहीं चाहते थे, वे चाहते थे साम्राज्य। आखिर चीन सरकार ने युद्ध से डर कर वेचाऊ आदि कई नये बन्दरगाह ब्रिटिश व्यापार के लिये खोल दिये। चीन का प्रधानमन्त्री स्वयं महारानी विक्टोरिया से माफी मांगने इंगलैण्ड गया।

फ्रांस इंगलैण्ड से पीछे क्यों रहता? उसने अनाम पर अधिकार कर लिया। चीन और फ्रांस में युद्ध छिड़ गया। फ्रांस हार

रहा था कि ब्रिटिश मंत्री ने बीच में पड़कर सन्धि करा दी, जिसके अनुसार फ्रांस बहुत लाभ में रहा। अनाम पर फ्रांस का अधिकार मान लिया गया। फ्रांस के साथ चीन को उलझता देख कर इंग्लैण्ड ने १८८५ में चीन साम्राज्य के दूसरे महत्त्वपूर्ण भाग बरमा पर भी हाथ साफ़ किया। बरमा भारत में शामिल कर लिया गया। बरमा चीन का करद राज्य था, इंग्लैण्ड ने भी उस समय चीन से ज्यादा झगड़ा न बढ़ाने की इच्छा से चीन को नियत कर देने का वचन दिया, लेकिन कभी भेजा नहीं। १८८६ में अंग्रेजों ने पोर्ट हैमिल्टन दबा लिया और इसका कारण यह बताया कि हमें डर है कि रूस कहीं कोरिया को न हड़प ले, पर रूस के कहने पर इंग्लैण्ड ने पोर्ट हैमिल्टन छोड़ दिया। कैसी अच्छी दलील है? दूसरा आदमी चोरी न कर ले, इसलिए मैं ही चोरी कर लूं।

उन्नीसवीं शताब्दि के अन्तिम दशाब्द का आरम्भ होते होते यूरोपीय देशों की तृष्णा बहुत बढ़ गई। जापान भी उन्नति करके मैदान में आ चुका था। वह भी चीन को निगलने में यूरोपियन शक्तियों का साथ देने लगा। कोरिया के प्रश्न को लेकर उसने १८९४ ई० में चीन से लड़ाई छेड़ दी, लेकिन उसका वर्णन हम फिर करेंगे। हां, इतना जरूर हुआ कि रूस ने जापान की इच्छा में बाधा डाली और इस उपकार के बदले उसने कुछ सुविधाएं प्राप्त कर लीं। मंचूरिया होते हुए ब्लाडीवास्टक तक रूस को रेलवे लाइन बनाने तथा पोर्टआर्थर के लिए एक रेलवे शाखा

खोलने का अधिकार मिल गया। पोर्टआर्थर में किलेबन्दी का अधिकार भी उसने ले लिया। यह देख कर फ्रांस की जीभ भी लपलपाई। उसने चीन को दबा कर मेकांग तराई में अपना प्रभुत्व बढ़ा लिया तथा कियांगसी और यूनन प्रान्तों में रेलों तथा खानों के सम्बन्ध में कुछ नये अधिकार प्राप्त कर लिये।

फ्रांस को मेकांग तराई में नया प्रदेश प्राप्त करते देख कर ब्रिटेन कब चुप रहने वाला था? उसने भी चीन पर दबाव डाला कि फ्रांस के साथ किये गये नये समझौते से हमारे साथ की गई सन्धि का उल्लंघन होता है। चीन फ्रांस से अधिकार वापस तो ले नहीं सकता था, और न ब्रिटेन इसके लिए उत्सुक था, वह तो इस बहाने अपना लाभ चाहता था, निदान चीन को विवश होकर ब्रिटेन को बरमा का और कुछ भाग भी देना पड़ा। एक वर्ष बाद ब्रिटेन ने शान्तुंग के उत्तरी किनारे पर पोर्ट आर्थर के ठीक सामने वई-हाई-वई नामक बन्दरगाह का पट्टा प्राप्त कर लिया।

जर्मनी भी मैदान में

साम्राज्यवादियों की दौड़ में जर्मनी जरा देर से शामिल हुआ था। वह अफ्रीका में विशेष स्थान नहीं प्राप्त कर सका था चीन में भी उसके लिये कोई स्थान न बचे, यह सोच कर वह कोई बहाना ढूंढने लगा। बिल्ली के भाग, छींका टूटा। दैवयोग से नवम्बर १८९७ में शान्तुंग प्रान्त में दो जर्मन पादरियों की

हत्या हो गई। यही काफी बड़ा कारण बन गया। जर्मनी ने तुरंत क्याऊ चाऊ नामक स्थान पर कब्जा कर लिया। चीन ने भी दब कर ९९ वर्षों के लिये उसे पट्टा लिख दिया। इसके अनुसार वह वहां किलेबन्दी कर सकता था। शान्तुंग में रेलवे लाइन बनाने तथा खानों से लाभ उठाने का भी उसे अधिकार मिल गया।

इधर दो फ्रांसीसी सैनिकों की हत्या के बहाने फ्रांस को फिर कुछ ऐंठने का मौका मिल गया। १० अप्रैल १८९८ को उसने टॉगकिंग की सीमा से यूनन फू तक रेल बनाने का अधिकार प्राप्त कर लिया। २०० मील दक्षिण की ओर क्वांगचाऊ की खाड़ी के आसपास की भूमि का पट्टा भी उसे मिल गया। जापान ने अपने लिए फूकियन प्रान्त में अधिकार मांगे। इटली ने भी कहा कि हमें चेकियांग में रेल बनाने और खानें खोदने का अधिकार दो तथा उसके समुद्र तट वाले सानमुन स्थान में जहाज पर कोयला लादने के स्टेशन बनाने का पट्टा लिख दो। उस समय तक चीन की सहनशीलता चरम सीमा तक पहुंच चुकी थी। इसलिए उसने इटली की मांगें पूरी करने से इन्कार कर दिया। एच० ए० गिबन्स के कथनानुसार "जो शक्तियां चीन के अनेक प्रान्तों पर अधिकार प्राप्त कर चुकी थीं, वे भी इटली को देख कर उसी तरह गुर्राने लगीं, जिस प्रकार जूठन चाटते हुए कुत्ते किसी नये कुत्ते को देख कर गुर्राते हैं।" इटली को चुप रह जाना पड़ा।

जापान का चीन से प्रथम संघर्ष

यूरोप की उपर्युक्त विविध शक्तियों के अलावा एशियायी जापान भी अब अखाड़े में कूद पड़ा था। यद्यपि वह साम्राज्यवाद की दिशा में योरोप का नया शिष्य था, तथापि वह शीघ्र ही उन की पंक्ति में बैठने योग्य हो गया और अपनी इस योग्यता का परिचय उसने दिया चीन को दबा कर। कोरिया बहुत समय से चीन का अधीनस्थ राज्य था। इस पर जापान की नजर पड़ी। कोरिया की भौगोलिक स्थिति जापान की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण थी। कोरिया प्रायद्वीप जापान सागर और पीतसागर के बीच में जापान की ओर निकला हुआ है। कहा जाता है कि कोरिया प्रायः जापान के कलेजे पर तनी हुई कटार है। जापान देख रहा था कि किस तरह यूरोपियन शक्तियां पूर्व में अपना बल बढ़ा रही हैं। उसे भय था कि यदि इन्हें न रोका गया और अपनी ताकत न बढ़ाई गई, तो कभी भी ये उसके लिये खतरा सिद्ध हो सकती हैं। कोरिया पर यदि किसी अन्य राष्ट्र का अधिकार हो जाता तब तो जापान की मौत में अधिक समय न लगता। इसलिये जापान वहां अपना प्रभाव शनैः शनैः बढ़ाने लगा और इस सम्बन्ध में उसने चीन से एक सन्धि भी की। इसके अनुसार चीन व जापान दोनों का कोरिया पर सम्मिलित नियन्त्रण हो गया। १८९४ ई० में कोरिया में एक उपद्रव उठ खड़ा हुआ, जिसे शान्त करने के लिये उसने चीन से सहायता मांगी। चीन ने जापान की बिना अनु-

मति लिये ही सेना भेज दी। जापान ने इसका विरोध किया तथा कोरिया की राजधानी और बन्दरों पर अधिकार करने के लिये १२ हजार सेना कोरिया भेज दी। चीन के इसका विरोध करने पर जापान ने चीन से लड़ाई छेड़ दी। अपनी सुसज्जित सेना, राष्ट्रीय विचारधारा और नवराष्ट्र-निर्माण के उत्साह के कारण पारस्परिक द्वेष से कमजोर चीन पर उसने विजय प्राप्त की। कोरिया को स्वतन्त्र घोषित किया गया। मञ्चूरिया, लाओतुंग प्रायद्वीप, पोर्ट आर्थर, फारमोसा आदि कई टापू चीन ने विवश होकर जापान को भेंट किये। २० करोड़ तैल का अर्थदण्ड भी जापान ने वसूल किया। रूस, जर्मनी आदि के अनुरोध पर जापान को पोर्ट आर्थर व लाओतुंग वापस करने पड़े, लेकिन जापान इस अपमान को न भूल सका। १६०४ ई० के युद्ध में उसने रूस को पछाड़ कर इसका बदला ले ही लिया। एक बार कोरिया को स्वतन्त्र मानने के बाद चीन ने उसमें दखल देने का मौका अपने हाथ से खो दिया, पर जापान कोरिया में निरन्तर बढ़ता गया। जापान का साहस यहां तक बढ़ा कि १८६५ में जापानी सिपाहियों ने कोरिया के राजमहल में घुस कर महारानी को मार डाला और महाराजा को कैद कर लिया। रूस भी कोरिया में अपने हाथ पैर पसारना चाहता था, इसलिये जापान से उसका संघर्ष बढ़ रहा था, परन्तु जापान के सामने उसकी कुछ न चली और १६०४ के युद्ध में हारने के बाद से तो रूस बिलकुल निराश हो गया। जापान कोरिया की निर्बल सरकार के साथ

खुल कर खेला। यूरोपियन राजनीति का शायद एक भी दांव नहीं है, जो जापान ने कोरिया में न खेला हो और अन्त में २२ अगस्त १६१० को उसे अपने राज्य का ही एक अंग बना लिया। कोरिया-निवासियों ने मुर्दों की भांति आत्मसमर्पण नहीं किया। वहां अब तक भी जापानी शासन के विरुद्ध असन्तोष है और कई बार विद्रोह किया जा चुका है, लेकिन छोटा सा कोरिया कहां तक सम्पन्न और शक्तिशाली जापान का मुकाबला कर सकता है ?

अठारहवीं सदी के अन्त तक करीब करीब आधे एशिया तक फैला हुआ मंचू वंश का महान् चीनी साम्राज्य १६ वीं सदी के अन्त में बिलकुल दीन हो गया था। चीन के अन्दर यूरोप की सभी शक्तियां पैर पसार चुकी थीं। १८ प्रान्तों में से १३ प्रान्तों में उन्होंने अनेक विशेषाधिकार प्राप्त कर लिये थे। अपने ही देश में चीन सरकार विदेशी शक्तियों से दब गई थी। उसकी न प्रतिष्ठा थी, न शक्ति। चीन की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, तथा व्यापारिक व व्यावसायिक नीति पर उसका कोई अधिकार न था। विभिन्न प्रान्तों में विविध यूरोपीय सरकारें चीन के व्यापार और व्यवसाय को तहस नहस कर रही थीं। लाश के ऊपर टूटने वाले गिद्धों की भांति वे चीन पर टूट पड़ीं और जितना कुछ भी लूट खसोट सकीं, उसे लेने की कोशिश करने लगीं। सभी शक्तियां चीनी समुद्री-तट पर बन्दरगाहों, विशेषाधिकारों और रियायतों के लिए छीना झपटी करने लगीं। अफ्रीका

तथा भारत आदि में जिस तरह साम्राज्यवादी यूरोपियन देशों ने अपनी बाकायदा सरकारें स्थापित करके उनकी स्वतंत्रता नष्ट कर दी थी, वही चीन में भी होने वाला था। लेकिन यह नहीं हो सका। इसका कारण यूरोपियन राष्ट्रों की दया या उदारता नहीं था, लेकिन पारस्परिक द्वेष बुद्धि था। कोई राष्ट्र एक दूसरे को बढ़ने न देना चाहता था। सभी चाहते थे कि चीन का यह प्रदेश हमारे हाथ में रहे। अन्त में उन्होंने पारस्परिक ईर्ष्या द्वेष को नष्ट करने और अन्तिम रूप से चीन के प्रभाव-क्षेत्रों का विभाजन करने के लिए १८९९ में कांफ्रेंस की। इसमें प्रत्येक देश ने प्रभावक्षेत्रों का विभाजन कर लिया, परन्तु पूर्ण अधिकार नहीं किया जा सका। हरएक देश ने अपने अपने क्षेत्र में दूसरे देशों के माल पर आर्थिक प्रतिबन्ध लगाने शुरु किये, लेकिन अमेरिका के विरोध के कारण उन्मुक्त द्वार का सिद्धान्त स्वीकार करना पड़ा और चीन के राजनैतिक प्रभुत्व की अक्षुण्णता को बनाये रखने का भी वचन दिया गया। अमेरिका ने सब देशों को लिखा था कि—"किसी भी राष्ट्र को बीच में पड़ कर प्रभाव क्षेत्र के बहाने चीन के व्यापार में हस्ताक्षेप करने की अनुमति न दी जायगी, क्योंकि सभी राष्ट्रों को वहां से लाभ उठाने का अधिकार है।" इससे चीन को बहुत लाभ हुआ, लेकिन चीन ने अन्य देशों को जो विशेषाधिकार दे रखे थे, उनमें रत्तीभर भी कमी न आई। चीन कहने को स्वतन्त्र था, परन्तु परतन्त्रता के सब दुःख सहन कर रहा था।

चीन की करुणा कहानी का अभी तक अन्त नहीं हुआ था। अभी उसके भाग्य में बहुत बेइज्जती, मुसीबतें और ठोकरें लिखी थीं, उसके अन्दर जो खराबी थी, वह सिर्फ उसकी सेना की कमजोरी ही न थी, बल्कि उससे भी गहरी कोई खराबी थी। उसका सारा सामाजिक और आर्थिक ढांचा ही टुकड़े २ हो रहा था। जो कुछ भी थोड़ी बहुत ताकत थी, वह कुछ उत्साही अफसरों की वजह से थी। उसकी जड़ में असलियत कम थी। लेकिन इस विपत्ति से चीन राष्ट्र में एक नवीन भाव का अभ्युदय हुआ। कुछ समय चीन में उन्नति व अवनति दोनों के चक्र एक साथ घूमते रहे। इसका वर्णन आगामी अध्याय में देखिये।

तीसरा अध्याय

बाक्सर-विद्रोह

यूरोपियन शक्तियों ने किस निर्लज्जता से चीन का सर्वस्व-हरण करने का प्रयत्न किया और उसमें वे कितना सफल हुईं, इसका कुछ उल्लेख हम पिछले अध्याय में कर आये हैं। वस्तुतः साम्राज्यवाद इतने नग्न रूप में संसार के इतिहास में बहुत कम प्रकट हुआ है। दूसरों की भलाई या धर्म आदि की आड़ भी, जो साम्राज्यविस्तार का आवश्यक अंग मानी जाती है, चीन में नहीं ली गई। यहां न बहाना था, न परदा। पं० जवाहरलाल के शब्दों में "तमाम बेहूदगियों को साथ में लिये हुए साम्राज्यवाद नग्न रूप में खड़ा था।"

एक ही साम्राज्यवादी देश किसी राष्ट्र का आर्थिक, नैतिक और सामाजिक जीवन नष्ट करके उसे कुचल डालने के लिए काफी होता है, और जहां ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, रूस तथा जापान आदि सभी साम्राज्यवादी देश मिल कर लूटने लग गये हों, वहां चीन की कितनी दयनीय अवस्था होगी, इसकी थोड़ी बहुत कल्पना की जा सकती है। चीन बुरी तरह पस्त पड़ा था। अफ़ीम ने उसका नैतिक पतन कर दिया था। रोजमर्रा विदेशियों द्वारा अपने राज्य में व्यापारिक और आर्थिक अधिकारों पर कब्ज़ा होते देख कर चीनी अपने को अधिकाधिक दीन, विवश और असहाय अनुभव करने लगे थे। साहस और आत्माभिमान परतंत्रता के साथ नहीं रह सकते।

नैपोलियन के शब्दों में चीन "एक सोता हुआ दैत्य" था, लेकिन साम्राज्यवाद ने उस सोते हुए दैत्य को झकझोर कर जगा दिया। इतना बड़ा राष्ट्र कब तक सोता? बहुत से नवयुवक, जो विदेशों से शिक्षा प्राप्त कर आये थे, अपनी मातृभूमि की दुर्दशा देख कर क्षुब्ध हो उठे। उन्होंने देखा कि उनकी मातृभूमि अनाथ सी है। जो देश चाहता है, आकर चीन की रेलवे और खानों पर अधिकार कर लेता है, बन्दरगाहों पर कब्ज़ा कर लेता है और तरह तरह की रियायतें पा लेता है। देश की व्यापारिक और आर्थिक नीति का नियंत्रण भी अन्य राष्ट्रों के हाथ में चला गया है। अन्य सब राष्ट्रों के विरुद्ध इन नवयुवकों में घृणा के भाव पैदा होने लगे, लेकिन इसके साथ ही उनमें यह विचार

भी उत्पन्न होने लगा कि आखिर यह सब क्यों हो रहा है ? हमारी सरकार क्यों नहीं इन राष्ट्रों का विरोध करती ? उसी की नपुंसकता से तो हमारे देश की इतनी दयनीय दशा है। वही तो हमारे देश के पतन की जिम्मेवार है। बस, यह खयाल आते ही चीन की विदेशी मंचू सरकार के विरुद्ध शिक्षित नवयुवकों में असन्तोष का भाव पैदा होने लगा। इन नवयुवकों में विदेशी राष्ट्रों के साथ साथ अपनी मंचू सरकार के विरुद्ध भी क्षोभ और रोष का भाव शनैः शनैः बढ़ने लगा।

चीन की मंचू सरकार न केवल विदेशी राष्ट्रों के मुकाबले में कमजोर थी, लेकिन उसका आन्तरिक शासन भी निहायत कमजोर व निकम्मा था। केन्द्रीय सरकार की समस्त चीन में कोई पूछ न थी। राज कर्मचारी अपना अपना प्रभाव बढ़ाने में मस्त थे। सभी लालची और रिश्वतखोर थे। प्रजा की कहीं पूछ न थी। हर एक प्रान्त और हर एक ज़िला स्वतन्त्र था। प्रान्तीय और जिला शासक जनता का बुरी तरह शोषण करते थे। यह सब देख कर तरुण चीनी दल यह समझने लगा कि जब तक देश की शासन-पद्धति में काफी परिवर्तन न किया जायगा, उसे प्रजा के प्रति उत्तरदायी और शक्तिशाली न बनाया जायगा, तब तक देश को अन्य विदेशियों के पंजे से छुड़ाना सम्भव नहीं है। चीन को नये सिरे से संगठित और शक्तिशाली बनाने के उत्सुक दल के नेता थे डा० सनयातसेन। अभी तक भी यह दल अपना पूर्ण संगठन न कर सका था। उसका काम देश में फैला तो बहुत

हुआ था, लेकिन गुप्त समितियों के रूप में। इस का वर्णन कुछ विस्तार से करने की आवश्यकता है, जो हम आगामी अध्याय में करेंगे।

डा० सनयातसेन के दल के अलावा एक और दल भी था, जो विदेशियों के तो बहुत बरखिलाफ था, लेकिन शासन-प्रणाली में क्रान्तिकारी परिवर्तनों का भी विरोधी था। चीन सरकार के अनेक उच्च अधिकारी इसी दल में थे। राजवंश के भी अनेक प्रमुख सदस्यों की इस दल से गुप्त सहानुभूति थी। स्वयं राजमाता जूत्सी इस दल की घनिष्ट मित्र थी। सम्राट को हटा कर और शासनाधिकार अपने हाथ में लेकर उसने सेना को आधुनिक ढंग पर शिक्षित और संगठित करने का यत्न किया। रक्षा के लिए उसने फौज की स्थानीय टुकड़ियों का भी सङ्गठन किया। ये सैनिक टुकड़ियां अपने को 'ई हो चुआन' (पवित्र एकता की मुष्टिका) कहती थीं। यूरोपियनों ने इन्हीं का नाम 'बाक्सर' रक्खा था। इन लोगों ने बौद्ध मन्दिरों आदि में बैठ कर विदेशियों और उनके धर्म को अपने देश से निकालने की प्रतिज्ञा की।

ज्यों ज्यों चीन में विदेशियों के षड्यन्त्र बढ़ते जाते थे, लोगों में विदेशियों के प्रति घृणा के भाव भी बढ़ते जाते थे। जनता में फैलने वाले इस भाव से भी बाक्सरों के आन्दोलन को बहुत बल मिला। बाक्सरों की मनोवृत्ति उनके निम्नलिखित घोषणा-पत्र से ज्ञात होती है :—

"विदेशी शैतान अपने साथ ईसाई धर्म का सिद्धान्त लेकर आये हैं। उन्होंने बहुत से दुष्टों व लोभियों को अपने धर्म में मिला लिया है। वे हमारे साथ अत्याचार भी करते हैं और हमारे आदमियों को बहकाते भी हैं। यहां तक कि हमारे यहां के बड़े बड़े राजकर्मचारी भी धन के लोभ में पड़ कर इन विदेशियों के दास बन गये हैं। ये विदेशी शैतान हमारे देश में रेलें और तार बना कर, तोपें और बन्दूकें बना कर, इंजिन और बिजली के लम्प बना कर बहुत प्रसन्न हो रहे हैं। ××× इन विदेशियों को देश से निकाल देना चाहिये, इनके घर और गिरजे जला दिये जाने चाहिये और इनकी सारी सम्पत्ति नष्ट कर दी जानी चाहिये। इनका कहीं नाम निशान भी न रहे। ये सब काम तीन बरसों में हो जाने चाहिये। अब ये दुष्ट नष्ट होने से नहीं बच सकते।"

इस घोषणा मे बाक्सर विद्रोहियों की मनोवृत्ति और विद्रोह के कारणों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। यह आन्दोलन लगातार फैलता जा रहा था। यूरोपियनों और विदेशी मिशनरियों का इन कट्टर देशभक्तों से विद्रोह होना लाजमी था। एक दिन शान्तुंग के एक अंग्रेज पादरी ने उन्हीं के मंदिर में उनके धर्म की निन्दा की, वे अपने को रोक न सके। वह पादरी मार दिया गया, कुछ और यूरोपियन व चीनी ईसाई पादरी भी मारे गये। विदेशी शक्तियों के कहने पर चीन सरकार ने खून और कतल के मुजरिमों को सजा भी दी, लेकिन तब तक यह आन्दोलन

बहुत बढ़ गया था। १३ जून १९०० को पेकिंग में बाक्सर-विद्रोह आरम्भ हुआ और तेजी से सब ओर फैल गया। पेकिंग से तिन्तसिन जाने वाली रेलवे लाइन बिलकुल तोड़ डाली गई, तार के खम्भे उखाड़ दिये गये, विदेशियों की तमाम सम्पत्ति जला दी गई, कई दिनों तक विदेशियों, और चीनी पादरियों की हत्या होती रही। हजारों चीनी ईसाई मार डाले गये और अन्त में पेकिंग की बड़ी बड़ी दुकानें जला दी गईं। राजकुमार तुआन और राजवंश के दूसरे लोग ये उपद्रव स्वयं करा रहे थे।

सारे देश में भयंकर उत्पात मच गया था। विदेशियों की स्त्रियां और बच्चे, जिन्होंने किसी प्रकार लुक छिप कर अपनी जानें बचाई थीं, आ आकर विदेशी राजदूतावासों में शरण ले रहे थे। १९ जून को विदेशी राजदूतों को समाचार मिला कि यूरोप की महाशक्तियों ने चीन के साथ युद्ध प्रारम्भ कर दिया है। चीन सरकार ने उनसे यह भी कह दिया था कि चौबीस घण्टे के अन्दर यहां से चले जाओ, अन्यथा हम तुम्हारी जान के जिम्मेवार न होंगे। इसके दूसरे दिन ही एक मंचू अफसर ने जर्मन राजदूत बैरन वान कटलर को मार डाला।

चीन सरकार ने कुछ दिन बाद विदेशी राजदूतों को सकुशल समुद्र तट पर पहुंचा देने के लिए लिखा, लेकिन वे सब अपनी अपनी सेनाओं के आने की प्रतीक्षा में वहां से न गये। एक जर्मन सेनापति के नेतृत्व में, जिसे कैसर की यह आज्ञा

प्राप्त थी कि चीनियों के साथ हूणों की तरह क्रूरतापूर्वक व्यवहार करना, इंग्लैण्ड, अमेरिका, रूस, फ्रांस और जापान आदि विभिन्न राष्ट्रों की सेनाओं ने मिल कर तिन्तसिन से पेकिंग की ओर कूच की। इस कूच में सभ्य राष्ट्रों की सेनाओं ने चीन की निरपराध जनता के साथ जो बर्बरतापूर्ण दुर्व्यवहार किया, उसकी भी एक करुण कहानी है। बहुत से लोगों ने इनके हाथों पड़ने की अपेक्षा आत्मघात करना अच्छा समझा। बहुत सी स्त्रियों ने छोटे छोटे पैर होने के कारण भागने में असमर्थ होकर आत्महत्या कर ली। मित्र राष्ट्रों की फौजों के 'मार्च' के पीछे पीछे मौत, आत्महत्या और जलते हुए गांवों का तांता भी चला। लड़ाई के एक अंग्रेज सम्वाददाता ने इस 'मार्च' का हाल बताते हुए लिखा था—

"ऐसी भी बातें हैं, जिन्हें मैं लिख नहीं सकता और जो इंग्लैण्ड में छप भी नहीं सकेंगी। लेकिन वे बातें बता देंगी कि हमारी यह पश्चिमी सभ्यता जंगलीपन के ऊपर पीतल की पालिशमात्र है।"

कुछ दिन तक युद्ध के बाद २६ अगस्त को पेकिंग पर कब्जा कर लिया गया और मि० लिच के कथनानुसार "उसके मंदिरों में घोड़े बांध दिये गये और यदि ललितकला सम्बन्धी कोई हजारों वर्षों की प्राचीन वस्तु मिली तो वह या तो तोड़ फोड़ दी गई या चुरा ली गई। पेकिंग शहर की जिस गली में मैं रहता था, वहां से मैंने एक सप्ताह तक गाड़ियों को इधर से उधर किताबें

ढोते देखा × × × ये किताबें राजमहल के सामने के आंगन में ला ला कर आग में डाली जा रही थीं। हजारों पुस्तकें इसी तरह नष्ट कर दी गयी थीं × × ×।" विदेशियों के पेकिंग आने से पहले ही राजमाता आदि सियान चले गये थे।

पेकिंग पर अधिकार करने के बाद चिली*प्रान्त पर अधिकार करने के उपाय सोचे जाने लगे, लेकिन इन शक्तियों की अपनी ही आपसी लाग डांट और कुछ संयुक्तराष्ट्र अमेरिका के रुख के कारण चीन का बटवारा न हो सका। पर फिर भी जो सन्धि हुई, वह उसके लिये अत्यन्त अपमानजनक थी। पुरानी व्यापारिक सन्धियां दोहराई गईं। बहुत से किले नेस्तनाबूद कर दिये गये, व्यापारसम्बन्धी नई रियायतें ऐंठ ली गईं और हरजाने के तौर पर विदेशी सरकारों, संस्थाओं, धार्मिक सभाओं और व्यक्तियों को चीनी राजकोष से पौने सात करोड़ पौंड (एक अरब रुपये) देने पड़े। सबसे भयानक चोट यह कि बाक्सर आन्दोलन के तमाम देशभक्त नेताओं को बागी करार देकर चीनी सरकार को उन्हें मौत की सजा देनी पड़ी। चीन राजवंश के राजकुमार को बर्लिन जाकर जर्मन राजदूत के वध के लिये कैसर से माफी मांगने के लिये विवश किया गया। जर्मन सैनिक इसी युद्ध में पेकिंग की प्रसिद्ध वेधशाला के बहुमूल्य यन्त्र चुरा कर बर्लिन ले गये थे।

* आजकल यह होपे-इ (पीले दरिया के उत्तर में) नाम से प्रसिद्ध है।

इधर पेकिंग में ये सब घटनायें हो रही थीं, उधर रूस ने मंचूरिया में बहुत सी सेनायें भेज दीं। अन्य राष्ट्रों के विरोध करने पर उसने सेनायें वापस करने का वचन तो दिया, लेकिन वापस करने के बदले वह सेनायें बढ़ाता गया। इसी अरसे में रूस ने चीन को झांसा देकर कितनी ही और मांगें भी उससे स्वीकृत करा लीं। रूस की यह प्रगति सहन न करते हुए जापान ने १६०४ में रूस से लड़ाई छेड़ दी। लेकिन यह लड़ाई चीन के लिये उसके तटस्थ रहने के बावजूद भी बहुत खतरनाक साबित हुई। युद्ध से होने वाला कोई लाभ तो उसे हुआ नहीं और युद्ध की सब हानियां उसे हुईं। युद्ध हुआ था चीन के प्रदेश मंचूरिया के वक्षःस्थल पर। मंचूरिया में चीनियों के हजारों घर तहस नहस हो गये। जब उन दोनों देशों ने सन्धि की, तो चीन से बिना पूछे ही मंचूरिया को आपस में बांट लिया। मंचूरिया में रूस ने जो रेलवे बनाई थी, उसका भी एक बड़ा हिस्सा जापान को मिला। पोर्ट आर्थर और लियाओतुंग प्रायद्वीप भी उसे मिले, जो चीन से होने वाले युद्ध के बाद उसे वापस करने पड़े थे।

विदेशियों ने दमन के द्वारा बाक्सर आन्दोलन को नष्ट कर दिया, लेकिन वे चीन में उत्पन्न सुधार-भावना और विदेशियों के प्रति घृणा को नहीं दबा सके। इसके विपरीत विदेशियों ने विद्रोह-दमन के लिये जो बर्बर अत्याचार किये थे, उनके कारण उनमें विद्रोहाग्नि और भी प्रज्ज्वलित हो उठी। सभी लोग क्रान्तिकारी सुधारों द्वारा चीन को अधिक बलवान और अधिक उन्नत

बनाने की आवश्यकता अनुभव करने लगे। स्वयं राजमाता भी अब सुधारों के पक्ष में हो गई। वह भी जनता को शासन-विधान और प्रतिनिधि शासन देने की बातें करने लगीं। विदेशों के शासन-विधानों का अध्ययन करने कमीशन विदेशों में भेजे गये। सन् १९०६ में यह भी घोषणा कर दी गई कि शीघ्र ही प्रतिनिधि-शासन जारी कर दिया जायगा।

लेकिन राजमाता की मातहती में चीन सरकार जो कदम बढ़ा रही थी, चीन की जनता उससे भी तेजी से आगे बढ़ रही थी। चीन सरकार उन्नति के प्रयत्न तो जरूर कर रही थी, लेकिन चीन की अवनति के लिये भी तो वही जिम्मेवार थी। चीन की सरकार ने ही तो ऋणों और हरजाने की रकमों के बदले में अपने देश की आय की भिन्न २ मदें और साधन विदेशियों के पास रहन कर दिये थे, उसी ने तो अपने प्रदेश और बन्दरगाह विदेशियों को सौंपे थे और उन्हें लूट की आज्ञा दे दी थी। इसलिये उसके विरुद्ध असन्तोष और भी तीव्र गति से बढ़ रहा था। बाक्सर-दल, जो विदेशियों का शासन तो पलटना चाहता था, लेकिन शासन-प्रणाली में क्रान्तिकारी परिवर्तन के लिये तैयार न था, विद्रोह-दमन के बाद पस्त हो चुका था। इसलिये डा० सन-यात सेन का दल इन दिनों खूब तरक्की पर था, लेकिन इसकी कथा आगामी पृष्ठों में पढ़िये।

चौथा अध्याय

सनयात सेन और प्रजातन्त्र की तैयारी

महान् मंगलमय भगवान की प्रकृति का यह नियम सा बन गया है कि जब कोई देश लगातार अवनत हो रहा हो, तब उसके उद्धार के लिये कोई महान आत्मा अवतार ग्रहण करती है। प्रत्येक देश का इतिहास इस नियम का साक्षी है। ये महान आत्मायें देश को अवनति के गढ़े से बचाती हैं, देश में सामाजिक या राजनैतिक क्रान्तियों का नेतृत्व करती हैं और देश को अत्याचारी सरकार या विदेशी दासता से मुक्त करा देती हैं। इतिहास में इन महान् विभूतियों का नाम अमर हो जाता है और आने वाली सन्तति सदा उनकी पूजा करती है। महात्मा बुद्ध,

हजरत ईसा और मुहम्मद, शंकराचार्य, सम्राट अशोक, शिवाजी, गुरु गोविन्द, नैपोलियन, बिस्मार्क, ऋषि दयानन्द, लेनिन और म० गान्धी आदि इसी नियम के उदाहरण मात्र हैं।

चीन की भी अवस्था कम दयनीय न थी। पिछले पृष्ठों में हम चीन की आन्तरिक और अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के बारे में कुछ जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। विदेशी राष्ट्र उसे मनमाने तौर पर लूट रहे थे, कोई रोकने वाला न था। देश की आन्तरिक स्थिति बहुत ही बिगड़ती जा रही थी। केन्द्रीय सरकार स्वयं ही अन्याय, अत्याचार व ज़ोरो-ज़ुल्म पर आश्रित थी, प्रान्तीय सरकारों को कहां से रोकती? प्रान्तीय सरकारों पर उसका कोई दबदबा न था। वे अपने को स्वतन्त्र समझती थीं। उनका जोर व जुल्म सीमा पार कर गया था। जनता में इस स्थिति के विरुद्ध असन्तोष होना स्वाभाविक था। लेकिन छोटे बड़े अधिकारियों द्वारा सदा उस असन्तोष का दमन कर दिया जाता और उसके नेताओं को कुचल दिया जाता। डा० सनयात सेन ने स्वयं तत्कालीन स्थिति का वर्णन करते हुये लिखा है—"चीन में राजनैतिक पुस्तकें या समाचार-पत्र नहीं आने दिये जाते, उन्हें पास रखना भी अपराध है, चीन का भूगोल भी थोड़े से अधिकारियों के सिवा किसी को नहीं पढ़ाया जाता और न पढ़ने की आज्ञा ही है, दूसरे देशों का भूगोल तो दूर की बात है। राजनियम या कायदे-कानून भी केवल विशेष अधिकारियों के सिवा और कोई नहीं पढ़ सकता। सेना-विभाग की पुस्तक का रखना भी ऐसा भारी अप-

राध है कि उसके लिये प्राणदण्ड से कम कोई सजा ही नहीं है। किसी प्रकार का नया आविष्कार करने की आज्ञा नहीं है, इसके लिए भी प्राणदण्ड का विधान है।" इस प्रकार अपना मंचू राज्य कायम रखने के लिये मंचू सरकार चीनी जनता को अन्धकार में रख रही थी। चीन इतिहास के एक लेखक के कथनानुसार तो "ठीक निशाना मारने वाले सिपाही को भी बहुत अच्छी नजर से नहीं देखा जाता था, क्योंकि मंचू अधिकारियों की सम्मति में जो सिपाही ठीक निशाने को मार सकता था, वह चाहे तो उन्हें भी निशाना बना सकता था।" चीन की यह हालत थी, जब चीन के उद्धारकर्ता डा० सनयात सेन कार्यक्षेत्र में आये।

जन्म और शिक्षा

नवीन चीन के निर्माता डा० सनयात सेन का जन्म १८६७ ई० में क्वांटुंग प्रान्त के चाओ हुंग गांव में हुआ था। बचपन से ही ये बड़े प्रभावशाली और होनहार थे। प्रत्येक वस्तु का निरीक्षण और मनन — यह बालपन से ही इनका स्वभाव था। चीन के रहन सहन और रीति रिवाज के अध्ययन का शौक आप को बचपन से ही था। वर्तमान व्यवस्था के प्रति विद्रोह की भावना भी आप में बचपन में उत्पन्न हो गई थी। चीन में उन दिनों यह रिवाज़ था कि स्त्रियों के पैर छोटे रखने के लिये उन्हें लोहे की जूती पहनाई जाती थी। छोटे पैरों में विशेष सौन्दर्य माना जाता था, लेकिन इससे लड़कियों को मर्मान्तक पीड़ा होती। अपनी

बहन की कराह और रोदन को सुन कर बालक सनयात सेन का हृदय पसीज उठा। उसने माता से प्रबल अनुरोध किया कि बहन को यह पीड़ा न दी जाय। पहले तो माता ने न माना, लेकिन बालक का विशेष आग्रह और युक्तिवाद देख कर वह मान गई और इस तरह चीन के इस महान् सुधारक का पहला सुधार अपने घर से प्रारम्भ हुआ। बड़े होने पर तो सनयात ने इस अमानुषिक प्रथा के विरुद्ध तीव्र आन्दोलन किया। अब यह प्रथा चीन से नष्ट भी हो गई है।

१८ वर्ष की अवस्था में सनयात अपने गांव से जलमार्ग द्वारा मकाओ गया। वह अंग्रेजी जहाज़ पर गया था। उसने इससे पहले कोई बड़ा जहाज़ न देखा था। यह विशाल पोत देख कर उस की आंखें खुल गईं। उसे मालूम हुआ कि चाओ हुंग गांव के बाहर की दुनिया कितनी उन्नत है। लेकिन इसी भाव के साथ ही उसे यह भी ख्याल आया कि हम चीनी ऐसे जहाज क्यों नहीं बना सकते? हम में कोई न कोई कमी जरूर है। सनयात सेन कहते हैं कि "मुझे जहाज़ के इंजिन या बायलर देख कर कोई ख्याल पैदा नहीं हुआ, लेकिन जब मैंने लोहे का एक लम्बा शहतीर देखा, तो मैं हैरान हो गया। इतना भारी शहतीर कैसे बनाया होगा और कारीगर इसे कैसे उठा कर जहाज पर लाये होंगे? विदेशी लोग इतना बड़ा काम कर सकते हैं और हम चीनी नहीं। जरूर वे हम से ऊंचे हैं।" यह वेदना डा० सनयात सेन के हृदय में आजन्म रही और इसी भेदभाव को दूर

करने के लिये — चीनियों को अन्य राष्ट्रों जैसा उन्नत बनाने के लिये उसने अपना समस्त जीवन अर्पित कर दिया।

होनोलूलू (अमेरिका) में तीन चार वर्ष शिक्षा प्राप्त करने के बाद वे फिर चीन आये और हांगकाँग के मेडिकल कालेज में शिक्षा प्राप्त करने लगे। चीन आते समय ही उन्हें अपने देश की वास्तविक स्थिति का ज्ञान हुआ। तट पर जहाज लगने से पहले कस्टम वालों ने उन्हें बहुत तंग किया। कस्टम कर्मचारियों को दिखाने के बाद सनयात सेन ने अपना सब सामान बांध लिया, लेकिन इसी समय एक दूसरे अफसर आये और सामान खोलने के लिये कहने लगे। सनयातसेन ने कहा कि सामान देखा जा चुका है। हम 'लिकिन' टेक्स लेने वाले हैं, इसलिये दूसरी बार दिखाओ। सनयात ने सामान दिखा दिया और फिर बांध दिया। कुछ मिनट बाद तीसरे अफीम के अफसर आये और फिर सामान खोलने के लिये कहने लगे। सनयात ने बहुत क्रोध के साथ फिर सामान खोला और बांधा। कुछ ही मिनट बीते होंगे कि चौथे अफसर आये और फिर सामान दिखाने के लिये कहने लगे। स्वाभिमानी सनयात यह अपमान सहन न कर सके, बोले— "वाहियात, मैं नहीं दिखाऊंगा।" "हम मिट्टी के तेल वाले हैं।" "क्या मेरे छोटे से सन्दूक और बिस्तरे में कनस्तर हो सकता है?" बात बढ़ गई, पर अन्त में सनयात ने सामान न दिखाया। उन्हें इसी समय मालूम हुआ कि चीन में रिश्वतखोरी किस सीमा तक बढ़ी हुई है? उसी समय उन्होंने चीन सरकार की

आलोचना करते हुये यात्रियों को सरकार के सुधार की आवश्यकता बतानी शुरू की। उन्होंने कहा कि "जिस सरकार के अफसर इतने रिश्वतखोर हैं, वह सरकार स्वयं भी अत्यन्त दूषित और त्रुटि-पूर्ण होगी।"

अपने गांव में आकर उन्होंने एक ऐसा काम किया, जिस से उन्हें शीघ्र ही गांव भी छोड़ना पड़ा। अमेरिका-प्रवास से सनयात सेन में अन्धविश्वास की भावना न रही थी। एक दिन किसी प्रसंग में गांववालों से वे कहने लगे कि हमारे मन्दिरों के देवता भी कैसे हैं, जो न अपनी रक्षा करते हैं और न अपने पूजक चीनियों का दुख दरिद्र दूर कर सकते हैं। यह कह कर उन्होंने मन्दिर में प्रतिष्ठित मूर्ति की अंगुलि तोड़ दी। इस पर गांव में हल्ला मच गया और स्थिति यहां तक नाजुक हो गई कि उन्हें गांव से बाहर भेजने में ही माता-पिता ने भला समझा। इसके बाद भी उन्हें निर्वासित रहना पड़ा और बरसों निर्वासित रहना पड़ा, लेकिन यह निर्वासन सबसे विचित्र और दुःखप्रद था।

गांव से जाकर वह कैण्टन और हांगकांग के मैडिकल स्कूल व कालेज में दाखिल हुये। सनयात सेन की इच्छा और रुचि थी सैनिक या कानूनी शिक्षा प्राप्त करने की, लेकिन चीन में कोई सैनिक या कानूनी विद्यालय ही न था। इसलिये विवश हो कर उन्हें डाक्टरी पेशा स्वीकार करना पड़ा। वह चाहते तो भाई के साथ मिल कर रुपया कमा सकते थे, लेकिन अपना सब हिस्सा, जो भाई से प्राप्त हुआ था, यह कह कर भाई को लौटा दिया कि

धन ने मुझे कभी आकृष्ट नहीं किया। मैडिकल कालेज में पढ़ते समय ही आपका चीन की गुप्त क्रान्तिकारिणी सभा से परिचय हुआ।

कार्यक्षेत्र में

कालेज से निकलते ही आपने प्रजातन्त्र चीन के मधुर स्वप्नों को पूरा करने के लिये काम शुरू कर दिया। मकाओ में आप शीघ्र ही प्रसिद्ध हो गये। दुकान में वे घायलों की चीरफाड़ करके उन्हें ठीक करते और बाकी समय में घायल देश की चिकित्सा और मंचू शासन की चीर-फाड़ की योजनायें 'बनाते। मकाओ और कैण्टन प्रदेश में उन्होंने चीन-पुनरुद्धार सभा के नाम से अनेक गुप्त सभायें स्थापित कीं। लेकिन मकाओ में अनुकूल वातावरण न देख कर आप कैण्टन में आ गये। यहां मंचू-शासन के विरुद्ध गुप्त सभाओं का सङ्गठन और भी जोरों से होने लगा। कुछ ही वर्षों में आपने इन सभाओं का बहुत सुन्दर और दृढ़ सङ्गठन कर लिया।

प्रथम विद्रोह का संगठन

१८९४ के चीन-जापान युद्ध के बाद चीन में दुर्बल और अत्याचारी मंचू सरकार के विरुद्ध जनता में असन्तोष बहुत तीव्र हो चुका था। सेना भी असन्तुष्ट हो चुकी थी, कैण्टन में विद्रोह हो गया। पुलिस भी सेना से मिल गई, नागरिक लूटे जाने लगे। ५०० नागरिकों का एक डेपुटेशन कैण्टन के गवर्नर

से अपनी विपत्ति की कथा कहने गया। सनयात सेन भी इस डेपुटेशन में थे। पर मूर्ख गवर्नर ने डेपुटेशन को ही विद्रोही करार देकर कैद करने की आज्ञा दे दी। बहुत से पकड़े गये। लेकिन सनयात सेन निकल भागे और गुप्त रूप से अपने साथियों को छुड़ाने का प्रयत्न करने लगे। कैंग्टन से १५० मील स्वाटो के विद्रोही दल को मिला कर आपने एक और क्रान्तिकारी षड्यन्त्र का संगठन किया। आप का उद्देश्य था साथियों को छुड़ाना और और कैंग्टन को मंचू सरकार से स्वतन्त्र कर के वहां मंचू सरकार से लड़ने के मुख्य केन्द्र स्थापित करना। बन्दूक, पिस्तौल, बारूद आदि जोरों से इकट्ठा होने लगा और दल की वृद्धि के लिए हांगकांग और इधर उधर भर्ती के लिये आदमी भेजे जाने लगे। विद्रोह की पूर्ण योजना बन चुकी थी। सब दल कैंग्टन में इकट्ठे हो रहे थे। सबको क्या क्या करना है, यह भी बताया जा चुका था। सिर्फ पलीता सुलगाने की देर थी कि स्वाटो से तार मिला कि भेद खुल गया है। सरकारी सेना और पुलिस ने दमन का वज्र उठाया और बहुत से विद्रोही गिरफ्तार कर लिये गये, लेकिन आप किसी तरह भाग निकले और चीन की सीमा से पार हो गये।

इसके बाद वे कई महीनों तक इधर उधर घूमते रहे। मंचू सरकार भी उनके खून की प्यासी हो रही थी। जापान, अमेरिका, जर्मनी और इंगलैण्ड सब देशों में उन्हें मारने के लिए मंचू सरकार ने दूत भेज दिये। अक्तूबर १८९६ ई० में वे लन्डन

के चीनी राजदूतावास में किसी तरह गिरफ़्तार भी हो गये। सारी कार्रवाही चीन सरकार की ओर से चुपचाप हुई थी। डा० सनयात सेन ने वहां रहने वाले अपने मित्र मि० कैराटली के पास इसकी सूचना गुप्त रूप से भिजवा दी। मि० कैराटली ने इंगलैण्ड के प्रधानमन्त्री से मिलजुल कर उन्हें रिहा करा दिया। इस घटना से आप संसार भर में प्रसिद्ध हो गये।

इसके बाद सनयात सेन ने विभिन्न देशों में घूम घूम कर महान् क्रान्ति की तैयारी शुरू की। विभिन्न देशों के प्रवासी चीनियों की मदद से आपने स्थान स्थान पर क्रान्तिकारी दल स्थापित किये। चीन में गुप्त कमेटियां स्थापित करने के लिये बाहर के देशों में आप रुपये इकट्ठे करते और शस्त्रास्त्र आदि भेजते रहे। इसके बाद जापान के योकोहामा में बहुत समय तक वे अपने कार्य का संगठन करते रहे। इन्हीं दिनों चीन में बाक्सर-विद्रोह हुआ, जिसका वर्णन हम पिछले अध्याय में कर चुके हैं। यद्यपि इसका दमन कर दिया गया, तथापि चीन में निरन्तर असन्तोष बढ़ता जा रहा था।

चीन में प्रतिगामी शक्तियाँ

बाक्सर विद्रोह-दमन के बाद चीन में सुधारों की आवाज़ जोरों से उठने लगी। हम ऊपर लिख आये हैं कि १९०६ ई० में सुधार करने की घोषणा की जा चुकी थी। इस घोषणा में यह बात स्पष्ट कर दी गई थी कि सम्राट् अब भी राज्य के अखण्ड

स्वामी हैं। फिर प्रजा को यह विश्वास दिलाया गया था कि कानून द्वारा शासन प्रणाली में कर्मचारियों के अधिकारों में आवश्यक सुधार किये जायेंगे। इस घोषणा से चीन के सुधारविरोधी दल को, जिसमें अधिकांश मंचू सरदार थे, बहुत निराशा हुई। उन्होंने राजमाता को उकसाया। फिर सुधारों का विरोध होने लगा। नई शिक्षा को नयी सुधारभावना की जड़ समझ कर उसे बन्द करने का प्रयत्न होने लगा। प्रबल राजमाता ने युवक सम्राट् को अपने वश में कर रखा था। वह सुधार का इच्छुक होता हुआ भी कुछ न कर सकता था। सम्राट् की स्थिति कितनी दयनीय और विवश थी, यह उनके अपने निम्नलिखित पत्र से अच्छी तरह ज्ञात होता है :—

'चाहे मेरा सिर धड़ से अलग कर दिया जाय, मुझे विष खिला दिया जाय, परन्तु मैं राज्य के इस ढकोसले के स्वांग को नहीं चाहता। मृत्यु ही मुझे मेरी जिम्मेवारी से छुड़ा सकती है। मृत्यु ही मुझे अपनी ४० करोड़ प्रजा का योग्य सम्राट् सिद्ध करेगी। मैं यह स्पष्ट कर दूं कि दूसरों की अधीनता में युवराज बनने, अपनी प्राणरक्षा करने, नष्ट साम्राज्य के कलंक को सिर पर लेने की अपेक्षा मेरा सिर यदि उतार लिया जाय, तो मैं उसे कहीं अच्छा समझता हूं। मैंने गम्भीरता-पूर्वक सब बातों पर विचार कर लिया है और अपने प्राणों की बाजी लगा कर भी मैं अपना कार्य करूंगा। अनाम का निकल जाना मुझे अत्यन्त अप्रिय था। फिर मंचूरिया और फारमोसा के जाने से मुझे दुःख हुआ, तृतीय

बार कियाउ चाऊ और पोर्टआर्थर के छिन जाने से मुझे क्रोध हुआ, मेरा हृदय क्रोध से भर गया। सब बातों पर गम्भीर विचार करने के बाद मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि सिवाय इसके और कोई चारा नहीं कि मैं साम्राज्य के लिये अपने प्राण संकट में डाल दूँ।" सम्राट ने सुधार करने का प्रयत्न शुरू किया भी, लेकिन राजमाता प्रत्येक नये कार्य में अड़चनें डालने लगीं। परन्तु अब जनता को जो आश्वासन मिल चुका था, वह वापस लेना भी सम्भव न था। जनता में सुधारों के लिए तीव्र आन्दोलन हो रहा था, इसीलिये विवश हो कर नयी घोषणा में वैध शासन जारी करने का वचन दिया गया था। इस समय चीनी दरबार की मानसिक दशा अत्यन्त विचित्र थी। वह यह अनुभव करता था कि सुधार दिये बिना काम नहीं चल सकता, लेकिन दूसरी ओर पुराने कर्मचारी, मंचू सरकार और खुशामदी दरबारी यह कहते थे कि एक बार प्रजा जागी, लगाम ढीली की कि अनर्थ हो जायगा, इसलिये उसे दबा रखना चाहिये।

जातीय सभायें

इस दुविधा के बीच चीन सरकार कभी इधर जाती थी, कभी उधर। विविध समयों पर विविध घोषणायें होती रहीं। २० सितम्बर १९०७ ई० में घोषणा की गई कि एक जातीय सभा बनाई जाय। १९ अक्तूबर को प्रान्तों, जिलों और नगरों में भी उसी प्रकार की जातीय सभायें स्थापित करने की घोषणा की गई। इन

जातीय सभाओं की स्थिति केवल परामर्श देने की थी। इन्हें कोई वास्तविक अधिकार नहीं दिया गया था। २७ अगस्त को घोषित किया गया कि १९१७ में पार्लमेंट का प्रथम अधिवेशन होगा।

इन्हीं दिनों राजमाता और सम्राट् दोनों का देहान्त हो गया। शिशु युवराज राजकुमार चुन की अभिभावकता में गद्दी पर बैठे। लोग नये शासन से बड़ी बड़ी आशायें बांधने लगे, लेकिन सब आशाएं झूठी निकलीं। फिर दमन का दौर दौरा चलने लगा। युआन शी काई, जो चीन का एक अत्यन्त प्रभावशाली व योग्य सेनापति था, बरखास्त कर दिया गया। शासन की दशा भी बिगड़ती गई।

१४ अक्तूबर १९०९ ई० को प्रान्तीय सभायें बैठीं। इन सभाओं ने चीन के विधान में सुधार के लिए अनेक मांगें पेश कीं। एक साल बाद जातीय सभा ने भी अनेक मांगें पेश कीं। इसके परिणामस्वरूप ता० ४ नवम्बर १९१० ई० को चीन सम्राट् की घोषणा हुई कि तीन साल में ही पार्लमेन्ट स्थापित कर दी जायगी।

विदेशों से सूत्र-संचालन

इन वर्षों के अन्दर चीन के जन-आन्दोलन के सूत्र संचालक डा० सनयात सेन विदेशों में बैठे बैठे सूत्र-संचालन कर रहे थे। रुपये से, शस्त्रों से, अपने विश्वस्त योग्य कर्मचारियों की

सहायता से वह चीन के अन्दर गुप्त समितियों का सुन्दर संगठन कर रहे थे। सारे चीन में गुप्त समितियों का जाल बिछ गया था। चीन सरकार भी इस से बेखबर न थी। उन्हें पकड़ लाने के लिये पहले ५००० डालर के इनाम की घोषणा की गई थी और पीछे से १ लाख डालर तक की घोषणा कर दी गई, लेकिन डा० सनयात सेन हाथ न आये और न आये। कई बार वह पकड़े जाने लगे, लेकिन प्रत्येक बार वह बच निकलते। कभी देश-भक्ति के नाम से सन ने पकड़ने वाले से अपील की और कभी पहरे से निकल भागे। उनके चेहरे पर अलौकिक प्रेम तथा उत्साह की झलक किसी भी शत्रु को पस्त करने के लिये काफ़ी थी। चीन में भी आप काफी समय तक गुप्त रूप से रहे, कई बार पुलिस व सेना का सामना भी हुआ, लेकिन आप बच निकले। अनेक पकड़ने वाले आप से बातें करने के बाद पश्चात्ताप करते हुये वापस चले गये। जिस पुरुष ने इंगलैंड में उन्हें दूतावास में गिरफ्तार कराया था, उसे अपनी नीचता पर इतना पश्चात्ताप हुआ कि उसने आत्मघात ही कर लिया। उनके इस तरह बार बार बच निकलने का रहस्य एक लेखक के शब्दों में निम्नलिखित है :—

"कठोर शब्दों की तो बात ही दूर है, कठोर विचार तक उनके स्वभाव के विरुद्ध हैं। उन्हें अपने साथियों और पड़ोसियों का ध्यान रहता है। त्याग या निःस्वार्थता की वह साकार मूर्ति हैं। वे पर्वत पर के ईसा के सदुपदेश की जीवित मूर्ति हैं। उनकी

सचाई, सरलता, देशभक्ति और देश के लिये कठिन से कठिन यन्त्रणा और मृत्यु तक सहन करने की शक्ति ने उन्हें समस्त चीनियों का प्रेम-पात्र बना दिया है। वे सताये गये, कैद हुए, अपमानित किये गये, उनके सिर के लिए पारितोषिक रक्खा गया उन्हें अपने घर से, अपने देश से, अपने समाज से हाथ धोना पड़ा। देश विदेश में अनेक कष्ट सहते हुए घूमना पड़ा। कभी एक राष्ट्र ने उन्हें आश्रय देने से इनकार किया, तो कभी दूसरे या तीसरे राष्ट्र ने। किसी भी राष्ट्रीय झण्डे के नीचे वे निरापद और सुरक्षित न रहे। बीस साल तक एक दिन भी उन्होंने यह अनुभव नहीं किया कि मैं अब पूर्ण सुरक्षित हूं।" फिर भी वे सुरक्षित रहे। जब मंचू सरकार ने उनके जीवित पकड़े जाने की आशा छोड़ दी, तो उनके सिर के लिये एक लाख डालर के इनाम की घोषणा की गई, लेकिन फिर भी वे मंचू सरकार के हाथ नहीं आये। उनकी और उनके साथ चीन की भाग्यश्री अभी प्रसन्न थी।

गुप्त समितियों का संगठन

डा० सनयात सेन की गुप्त समितियों का संगठन और कार्य-शैली उन्हीं के शब्दों में सुनिये :—

"हमारे प्रधान, नायक और नेता सभी उत्साही, बुद्धिमान और साहसी मनुष्य थे। हम लोग गुप्त रूप से मिलकर इन्हें अपने विधान के अनुसार चुनते थे। हमारी समिति की शाखाएं

प्रत्येक प्रान्त में थी। हमारे अधिवेशन भिन्न २ घरों में होते थे और हम सभी स्थान बराबर बदलते रहते थे। प्रत्येक जिले के कसबों में तीस या चालीस केन्द्र-स्थान थे। प्रत्येक केन्द्र में कम से कम १००० मनुष्य इशारा पाते ही बलवा करने और जिले का काम अपने हाथों में ले लेने के लिए उद्यत थे। जिलों में समाचार आदि स्वयंसेवकों द्वारा जाते थे और हमारा यह व्यवहार मौखिक (लिख कर नहीं) होता था। प्रत्येक जिले में हमारे अनुयायियों के ऐसे समूह थे, जिन्हें विधिपूर्वक शासन करने की शिक्षा दी गई थी। यह लोग इशारा पाते ही पदों को लेकर निर्दिष्ट रीति के अनुसार काम करने के लिये तैयार रहते थे।" इस वर्णन से डा० सन की कार्यकुशलता, संगठनचतुरता और दूरदर्शिता की कुछ कल्पना की जा सकती है।

चीन जैसे विशाल, देश में जहां रेल, तार, या अन्य यातायात के साधन दुर्लभ थे, जहां विदेशी शिक्षा तक का प्रचार शून्य के बराबर था, जहां प्रान्तीय सरदार मनमानी करते और प्रजा की किसी भी जागृति को सहन न करते हुये कुचल देते थे, वहां उपर्युक्त संगठन करना कितना कठिन था, और यह सब काम हो रहा था प्रायः चीन से हजारों मील दूर बैठकर।

चौमुखी जागृति

डा० सनयातसेन का कार्यक्षेत्र केवल राजनैतिक जागृति तक सीमित न था। वे जागृति के सभी क्षेत्रों में नेतृत्व कर रहे थे।

इसका परिणाम यह हुआ कि नवीन जागृति के समय किसी देश के जो लक्षण दिखाई देते हैं, वे सभी लक्षण १६११ तक चीन में दीखने लगे। सैनिक शिक्षा की ओर चीनियों की रुचि बहुत बढ़ गई, क्योंकि उन्हें यह अनुभव हो रहा था कि सैनिक दुर्बलता के कारण ही चीन हमेशा परास्त होता रहा है। सामाजिक क्रांति भी प्रारम्भ हो गई थी। लम्बी लम्बी चोटियां और स्त्रियों के पैर छोटे करने के लिये लोहे के तंग जूते भूतकाल की चीजें बन रही थीं। अफीम के विरुद्ध भी जन-आन्दोलन बढ़ रहा था। सरकार ने १६०७ में सब चराडूखाने बन्द कर दिये थे। स्त्रियों में भी जागृति होने लगी थी। विरोधियों के विरुद्ध घृणा और असन्तोष के भाव बढ़ रहे थे। आर्थिक पराधीनता से भी मुक्ति पाने के लिए देश के उद्योगधन्धों की तरक्की और विदेशी माल के बहिष्कार का आन्दोलन सफल हो रहा था। मंचू राजवंश की शिथिलता और विदेशियों की आधीनता से देश का वातावरण उसके विरुद्ध हो रहा था। राजमाता जूत्सी राजनीतिज्ञ और समझदार थीं। सम्भव था कि वे चीनी जनता के विदेशी-विरोधी भावों को उकसा कर, राजवंशविरोधी भावों को दबा देतीं, लेकिन नवम्बर १६०८ में उनका देहान्त हो गया था। इसके बाद चीन के राज्याधिकारियों में कोई चतुर राजनीतिज्ञ न रहा था, जो चीनी जनता के भावों की शक्ति और सामर्थ्य को समझता। इसलिए सुधार की अनेक घोषणायें होने पर भी राजवंश के विरुद्ध आन्दोलन जोर पकड़ता गया।

विदेशी शक्तियां भी नये उठते हुए तरुण चीन को बड़े भय से देख रही थीं। वे यह समझ रही थीं कि यह नया तरुण चीन विदेशियों के प्रभुत्व को नष्ट कर देगा, इसलिये वे मंचू-सम्राट् की सरकार को जनता में उठने वाले राष्ट्रीय भावों के दमन के लिए दबाने लगीं। शिशु-सम्राट् के संरक्षक दुविधा में थे। एक ओर जनता का आन्दोलन था, दूसरी ओर विदेशी शक्तियों की तोप तलवारें थीं। वे कभी जनता की बात मानने लगते, तो विदेशी शक्तियों से डर कर मानने से इनकार कर देते। पार्लमेंट की स्थापना जल्दी नहीं की गई। इसी अरसे में आगे कोई अधिकार मिले, न मिले, इस भय से विदेशी शक्तियों ने चीन सरकार से कुछ नई रियायतें भी ले लीं। मंगोलिया के अनेक नगरों में रूसी प्रतिनिधि रहने लगे। जापान ने भी एक प्रदेश पर अधिकार कर लिया। अंग्रेजों ने बरमा की सीमा बढ़ा ली। विदेशी पूंजीपतियों को मंचूरिया में रेल बनाने का अधिकार दे दिया गया। विदेशियों से ऋण भी बहुत बड़ी तादाद में लिया गया। इससे चीन में मंचू सरकार के विरुद्ध और भी असन्तोष फैल गया।

पांचवाँ अध्याय

विद्रोह और प्रजातन्त्र की स्थापना

विद्रोह के लिये जिस चिनगारी की प्रतीक्षा हो रही थी, वह ज़ेचुआन प्रान्त में अकस्मात ही लग गई। शासन-सुधार के अनुसार चीन सरकार ने रेल, तार, नहर, पुल व सड़कों आदि के प्रबन्ध के लिए एक नया विभाग स्थापित किया था। पहले प्रत्येक प्रान्त अपनी अपनी रेलों का प्रबन्ध करता था। आमदनी और खर्च सब प्रान्तीय सरकारों के ज़िम्मे था। पर इन रेलों का प्रबन्ध ठीक न था, इनमें मनमाना अन्धेर होता था, बेईमानी की कोई सीमा न थी। बड़े बड़े सरकारी कर्मचारी जी खोल कर रुपया खाते थे। नये सरकारी अधिकारी की योजना यह थी कि

सब मुख्य मुख्य लाइनें केन्द्रीय सरकार के हाथ में रहें और शाखाओं का प्रबन्ध पहले की तरह प्रान्तीय सरकार के हाथों में रहे। नये अधिकारी ने रेलों की पुनर्व्यवस्था के लिये ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी व अमरीका की संयुक्त कम्पनी से ६० लाख पौंड कर्ज लिया और शीघ्र ही ४० लाख पौंड और लेने का विचार प्रकट किया। रेलों की पुनर्व्यवस्था आवश्यक थी। जनता विदेशियों और अत्याचारी मंचू सरकार से पहले ही खिजी हुई थी। प्रान्तीय रेलों पर विदेशी सरकारों के रुपयों से मंचू सरकार के अधिकार की बात सुनते ही वह उन्मत्त हो गई। प्रान्तीय सरकारों के अनेक अधिकारी और धनिक भी जो प्रान्तीय रेलों से खूब नफा कमाते थे, इस आन्दोलन के बढ़ाने में सहायक हो गये। सरकार के इस उपयोगी प्रस्ताव का भी उलटा अर्थ लगाया जाने लगा कि सरकार जनता का वह रुपया खाना चाहती है, जो लोगों ने रेल के लिए कर्ज दिया था। चीन में आज तक किसी भी सरकारी काम का इतना विरोध न हुआ था। सारे समाचार-पत्र विरोध पर तुले थे। देशभक्ति, स्वार्थ और अज्ञान का इतना विचित्र संमिश्रण था कि उसके आगे तर्क न चलता था। सरकार का समझाना व्यर्थ गया। लोगों का भ्रम दूर करने के लिये केन्द्रीय सरकार ने ६ फीसदी व्याज पर बाण्ड देने का प्रस्ताव पेश किया, जिससे लोगों को यह विश्वास हो जाय कि उनका रुपया मारा न जायगा। लेकिन जनता तो विद्रोह के लिये तुली बैठी थी। नेताओं ने भी जनता के अज्ञान का खूब लाभ उठाया।

अन्य प्रान्तों की तरह जेचुआन में भी सरकार-विरोधी आन्दोलन हो रहा था। यहां इस आन्दोलन को संगठित रूप से चलाने के लिये 'चेंगतू रेलवे लीग' बनाई गई। इसने यह मांग पेश की कि लाइनों का प्रबन्ध फिर पूर्ववत् प्रान्तों को सौंप दिया जाय। कुछ दिन बाद यह भी आवाज उठाई गई कि सरकार ने जो व्याज देना तय किया है, वह हम स्वयं ही भूमिकर सरकारी खजाने में न सौंप कर वसूल कर लें। इस मांग को कार्यान्वित करने के लिये प्रबन्ध समितियां भी बना दी गईं। सरकार को मालगुजारी मिलना बन्द हो गया। महीना समाप्त होते होते इस आन्दोलन ने और भी प्रबल रूप धारण कर लिया। व्यापारियों ने हड़ताल करके दुकान बन्द कर दीं। सरकारी कर्मचारियों की आफत आ गई। विद्यार्थियों ने आन्दोलन-प्रचार की एक नई युक्ति ढूंढ निकाली। वे लकड़ी के टुकड़ों पर निम्न आशय के वाक्य लिख कर नदी में छोड़ देते कि—'चेंगतू के सब कर्मचारी मारे गये, 'शस्त्र धारण करो' 'तुम्हारा सर्वनाश करने के लिए सेना आ रही है।' लकड़ी के ये टुकड़े जिस गांव में पहुंचते, वहीं जोश फैल जाता और लोग सतर्क हो जाते।

आखिर सरकार की नींद भी खुली। उसने दमन करने का निश्चय कर लिया। उक्त रेलवे लीग के सब सदस्य धोखे से गिरफ़्तार कर लिये गये। उन्हें गिरफ्तार करके प्रान्तीय वाय-सराय ने समझा कि आन्दोलन समाप्त हो गया। इसी आशय की रिपोर्ट उसने पेकिंग भेज भी दी। नेता गिरफ्तार हो गये थे,

लेकिन नौजवानों का उत्साह ठंडा न हुआ था। विद्यार्थी युवकों ने जाकर आसपास के ग्रामीणों को सरकार की दमन नीति के विरुद्ध उभारा। फलस्वरूप सहस्रों ग्रामीणों ने आकर प्रान्तीय राजधानी को घेर लिया, इसके बाद देखादेखी प्रान्त के अन्य जिलों में भी विद्रोह फैल गया। इन गांव वालों के पास न पैसा था, न शस्त्रास्त्र और न सैनिक शिक्षा। इनके पास केवल एक ही चीज़ थी और वह थी इनका उत्साह। सच्चा बल हृदय में रहता है, हाथ में नहीं। केन्द्रीय सरकार ने जो सेना भेजी थी, वह सफल न हो सकी। आखिर जेचुआन के वायसराय ने घबरा कर अपने पद से स्तीफा दे दिया। गुप्त समितियों के नेताओं ने जो वस्तुतः आन्दोलन का सूत्रसंचालन कर रहे थे, २७ नवम्बर को जैचुआन प्रान्त की राजधानी चेंगतू में प्रजातन्त्र की घोषणा कर दी।

अन्य प्रान्तों में भी

जैचुआन के पीछे होपेयी प्रान्त में विद्रोह शुरू हो गया। वायसराय भाग गये। एक प्रमुख सेनापति मय अपनी सेना के विद्रोहियों में जा मिला। ४८ घण्टे में वूचंग और हैंको भी ले लिये गये। उस दिन हैंको में मिलने वाले सब मंचू आबालवृद्ध मार दिये गये। सरकारी शस्त्रागार पर भी अधिकार कर लिया गया। विद्रोहियों का बल बढ़ता गया। विद्रोही सेनापति जनरल लि युआन हुंग के पास इस समय २५००० सुशिक्षित सैनिक थे।

नये रंगरूट भी भरती हो रहे थे। सरकारी सेनाओं की बरदी खाकी थी, तो इनकी काली। विद्रोहियों की पताकाओं पर 'हिसन् हन, माइ ह मन' लिखा रहता था, जिसका अर्थ है नवीन हन राजवंश की जय, मंचुओ को मारो। समस्त चीन में एक स्वातन्त्र्य गीत का प्रचार हो गया था, जिसके कुछ अंशों का अनुवाद नीचे दिया जाता है:—

स्वतन्त्रते, स्वर्ग की श्रेष्ठतम दिव्य वस्तु
शान्ति के साथ मिलकर तुम इस पृथ्वी पर करोगी
सहस्रों विचित्र नये काम।
आकाश तक पहुंच कर
बादलों का रथ और वायु का घोड़ा बना कर
आओ, आओ, पृथ्वी पर राज्य करने के लिये।
हमारे दासत्व के अन्धेरे नरक के नाम पर
आओ, हमको अपने प्रकाश के एक किरण से प्रकाशित करो
दिन को अपने विचारों में, रात को अपने स्वप्नों में
मैं अपनी पितृभूमि के दुःखों को देखता हूं,
परन्तु स्वतन्त्रता का चंचल स्वभाव
मुझे उसकी प्राप्ति से रोकता है।
हा शोक, मेरे भाई सभी दास हैं।
हा शोक, स्वतन्त्रता मर गई,
सर्वश्रेष्ठ एशिया कुछ नहीं है
सिवाय एक विस्तृत मरु भूमि के।

कितनी भावपूर्ण कविता है। इस संगीत को गाते हुए विद्रोही सैनिक निकलते और सुनने वाली जनता भी विद्रोहियों में शामिल हो जाती।

इसी अवसर पर विद्रोही नेताओं ने निम्न घोषणा निकाली थी:—

"सब हन भाइयों (अर्थात् चीनियों) को जानना चाहिए कि राजक्रान्तियों का उठना (या विद्रोह) जनता के उद्धार और अपराधियों को दण्ड देने के लिए हुआ है। मंचू-शासन प्रजा-पीड़क, क्रूर, पागल और बुद्धिहीन रहा है। उसने लोगों पर कड़े कड़े टैक्स लगाये हैं और लोगों का सर्वस्व निचोड़ लिया है। जो लोग सारे देश में भूखों मर रहे हैं, उनको सहायता नहीं दी जाती और दूसरी ओर राजमहलों व उद्यानों के बनाने और सजाने के लिए लोगों पर भारी भारी टैक्स लगाये जा

"इसलिए सब भाइयों को चाहिए कि अपने कर्तव्यों को समझें और राज्यक्रान्ति करने वाली सेना को ऐसे असभ्य विदेशियों का नाश करने में सहायता दें। प्रत्येक मनुष्य का ईश्वर-निर्दिष्ट कर्त्तव्य और दायित्व अमिट है। वह कर्त्तव्य यह है कि जो वस्तु जनता को हानि पहुंचा रही है, उसे दूर कर दिया जाय और मिट्टी में मिला दिया जाय। आज का सुअवसर हमें ईश्वर ने दिया है, यदि हमने इसका सदुपयोग न किया, तो फिर कब तक बैठे प्रतीक्षा करते रहेंगे?"

धीरे २ और प्रान्तों में भी विद्रोहाग्नि फैलती गई और उन उन प्रान्तों के सैनिक विद्रोही दल में आ आकर मिलने लगे। अनेक प्रान्तों के हाथ में आ जाने से क्रान्तिकारियों के पास साधनों की कमी भी दूर हो गई थी। विदेशों में बैठे बैठे डा० सनयात सेन बराबर सहायता कर रहे थे। दक्षिण अमेरिका के प्रवासी चीनियों ने ही १० लाख डालर सहायतार्थ भेजे थे। जनता भी खुशी से विद्रोहियों को सहायता दे रही थी। विद्रोही नेताओं को विदेशियों से बहुत भय था कि कहीं वे हमारा मुकाबला न करने लग जावें। इसलिए सब को यह सूचित कर दिया गया था कि विद्रोहियों के जान-माल पर भूल कर भी हमला न किया जाय। प्रजातन्त्र सेनापति की हैसियत से मि० युआन हुंग ने विदेशी राष्ट्रों को यह आश्वासन भी दिया था कि हम उनका बालबांका भी न करेंगे और न उनके विशेषाधिकार छीनेंगे।

नये सेनापति

२१ अक्तूबर को ई चांग तथा दो दिन बाद कुइ कियांग और चांगशा विद्रोही शासन में चले गये। २५ अक्तूबर को कांतुंग प्रान्त के गवर्नर को बम से मारा गया और सारा प्रान्त प्रजातन्त्र के अन्तर्गत हो गया। अब सरकार बड़े पसोपेश में पड़ी। उसे अपने उद्धार के लिए चीन में कोई आदमी नज़र न आया। युआन शिकाई नामक योग्य और प्रभावशाली सेनापति को पहले

ही वह निकाल चुकी थी। अब उसे फिर बुलाने का निश्चय हुआ। उसे लिखा गया, लेकिन वह तब तक न आया, जब तक कि उसकी बहुत सी शर्तें न मान ली गईं। और जब वह आया, तब बहुत देर हो चुकी थी। इधर डा० सनयात सेन के दिली दोस्त हुआंग सिंग नामक योग्य सेनापति ने विद्रोही सेना का नेतृत्व अपने हाथ में लिया। उनके प्रयत्न से विद्रोही सेना, जो एक युद्ध में हार जाने से तितर-बितर होने लगी थी, फिर संगठित हो गई। हुआन सिंग बहुत ही वीर था। डा० सन की राजनीतिक, मौलिक सूझ और प्रतिभा गज़ब की थी, तो हुआंग एक अनथक सिपाही, युद्ध के लिए उत्सुक, और सदा प्राण हथेली पर लिये रहने वाला बहादुर था। सन अपने प्रभावशाली वक्तृत्व से लोगों में जान फूंक देता था तो हुआन उन वीरों को लेकर युद्धक्षेत्र में विजय प्राप्त करने वाला था। हुआंग पास की चीज़ देखता था, सन दूर की। हुआंग का हाथ हमेशा तलवार पर रहता था, परन्तु सन तलवार का प्रयोग बिलकुल अन्त में करने का पक्षपाती था। दोनों एक दूसरे के पूरक थे। डा० सन के साथ बहुत समय तक रहने से हुआंग उसके आदर्शों, विचारों और योजनाओं से अच्छी तरह परिचित हो चुका था। दोनों को एक दूसरे पर — सन को उसकी कार्यकर्तृत्व-शक्ति पर और हुआंग को उसकी योजनाओं पर पूर्ण विश्वास था। हुआंग के विद्रोहियों का नेतृत्व करने पर सरकार की विजय की रही-सही आशा भी जाती रही। नये सेनापति युआन शिकाई ने आकर

विद्रोही नेताओं के साथ सरकार की ओर से समझौते की चर्चा शुरू कर दी।

सम्राट् का पश्चात्ताप

इधर समझौते की चर्चा हो रही थी, उधर शंघाई व नानकिंग की जनता ने बिना अपने सेनापतियों व सुशिक्षित सेना के विद्रोह कर दिया। मंचू-अधिकारियों ने भ्रमवश अपने हजारों सैनिकों पर भी सन्देह किया और उनसे हथियार छीनने का हुक्म दे दिया। इस पर वे भी विद्रोहियों में मिल गये। शंघाई और नानकिंग के अलावा अन्य भी अनेक बन्दरगाह विद्रोहियों के हाथ में आ गये। अब सिर्फ पेकिंग या चिली प्रान्त ही मंचू सरकार के हाथ बच रहा था। मंचू सरकार भयभीत थी। विद्रोही किसी तरह मान नहीं रहे थे, सरकार का समस्त जनबल व्यर्थ सिद्ध हो चुका था। आखिर ३० अक्तूबर को सम्राट् के नाम पर निम्नलिखित घोषणा निकाली गई :—

"तीन वर्ष हुए, जब हमने अत्यन्त शंका और आशंका के साथ शासन का गुरुतर कार्य अपने हाथ में लिया था। हमारी सदैव यही आकांक्षा रही है कि प्रजा का हित साधन करें, परन्तु हमने अयोग्य मन्त्री नियत किये और राजकार्य में बहुत कम राज-नीति का परिचय दिया।.........

"जनता का बहुत-सा धन ले लिया गया है.........क्रमशः दशा यहां तक पहुंची कि प्रजा में अशान्ति फैल गई, पर हमें

इसका पता न था। आपत्ति सिर पर थी, पर हमें इसकी सूचना तक न दी गई...... सारांश यह कि सारा साम्राज्य उबल रहा है, लोगों के हृदय क्रोध से जल रहे हैं, गत सम्राटों की आत्माओं को क्षोभ हो रहा है और प्रजा अत्यन्त कष्ट में है। इसमें दोष केवल हमारा है और हम सारे संसार के सामने प्रजा से यह शपथ खाते हैं कि पूर्ण नियमित शासन को संस्थापित करने के लिए जिन सुधारों की आवश्यकता है, उनके लिए प्रयत्न करेंगे।

"तुम सब मन्त्रियों तथा प्रजावर्ग के ऊपर शासन की दृष्टि से हमारा शरीर अत्यन्त दुर्बल है। इसी का यह परिणाम है कि ऐसा विद्रोह उठा है, जो हमारे पूर्वजों के सब सुकृतों को नष्ट कर देगा। हमें अपनी असफलता पर शोक और पछतावा है। हमें अपनी प्रजा और सेना पर भरोसा है कि उनकी सहायता से हमारी करोड़ों प्रजा में पुनः शान्ति स्थापित हो जायगी तथा हमारे सिंहासन की जड़ और भी मजबूत हो जायगी। उपद्रव के स्थान में शान्ति और भय के स्थान में निर्भयता का स्थापित होना केवल प्रजा की, जिस पर हमें पूरा भरोसा है, राजभक्ति पर निर्भर है। इस समय देश की आर्थिक और राजनैतिक दोनों अवस्थायें इतनी बिगड़ी हुई हैं कि यदि राजा और प्रजा मिल कर काम करें तो भी दशा ठीक नहीं होगी। पर यदि जनता जातीय रक्षा की ओर ध्यान न देकर विद्रोहियों के बहकावे में आ जावेगी तो उस पर कोई भारी आपत्ति आवेगी और

तब चीन का भविष्य सचमुच अन्धकारमय हो जावेगा। इसी लिए हमारा चित्त चिन्ता और आशंका मे पूर्ण रहता है। हमें पूर्ण आशा है कि हमारा सम्पूर्ण प्रजावर्ग हमारे अर्थ को समझ जायगा।"

परन्तु अब अवसर हाथ से निकल गया था, सम्राट् की इस पश्चात्तापपूर्ण घोषणा का भी जनता पर कोई प्रभाव न पड़ा। इसके बाद दो-तीन अन्य घोषणाएं भी निकलीं, जिन में प्रजा को सुधार देने की चर्चा थी। एक घोषणा द्वारा सब राजद्रोहियों को क्षमा दे दी गई थी। शासन-सुधारों की चर्चा भी जोरों से होने लगी। मन्त्रिमण्डल ने त्यागपत्र दे दिया। युआन शिकाई को प्रधानमन्त्री बनाया गया। जातीय सभा ने एक नया विधान तैयार करके इंगलैंड की भाँति नियमित राजसत्ता को अपनाया। सम्राट् ने एक घोषणा द्वारा जनता को सूचना दी कि—

"३०० वर्ष राजवंश चला है। मैं आपका वंशज पु यि (बालक-सम्राट्) नियमित शासन का प्रबन्ध कर रहा हूं। परन्तु मेरी नीति ठीक नहीं थी और मैंने योग्य कर्मचारियों की नियुक्ति नहीं की, इसीलिए ये सारे उपद्रव हुए। पवित्र राजवंश के पतन की आशंका से मैंने जातीय सभा का विधानसम्बन्धी परामर्श मान लिया है। अब पार्लिमेंट शीघ्र ही संगठित होगी। राजकुमार आदि उच्च पदों को न पावेंगे तथा मेरे वंशज इस घोषणा का सदैव पालन करेंगे।"

इस घोषणा का भी कुछ परिणाम न निकला। एक डेढ़ साल

पूर्व इस घोषणा का जनता में विशेष स्वागत होता और सम्राट् का नाम चीन के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जाता, लेकिन समय पर थोड़ा मिलने से सन्तोष हो जाता है और पीछे बहुत से भी सन्तोष नहीं होता। प्रायः सभी देशों के स्वातन्त्र्य या प्रजातन्त्र आन्दोलनों के इतिहास में सरकार की ओर से यह भूल हुई है और इसका परिणाम उन्हें और भी भीषण विद्रोह के रूप में भुगतना पड़ा है। चीनी जनता में भी अबतक मंचू राजवंश को उखाड़ने का भाव प्रबल हो चुका था। फिर जनता यह भी समझ रही थी कि दरबार ने ये घोषणाएं विवश होकर निकाली हैं, वे किसी भी समय अपने वचनों से फिर सकते हैं। इन घोषणाओं से ज्यों ज्यों दरबार की दुर्बलता प्रकट होती जाती थी, विद्रोहियों का हृदय और भी उत्साहपूर्ण होता जाता था।

प्रजातन्त्र की घोषणा

चीन के नये प्रधानमन्त्री युआन शिकाई ने विद्रोहियों से समझौते की चर्चा शुरू की। युद्ध कुछ समय के लिए स्थगित कर दिया गया। युआन का कहना था कि सम्राट् की सत्ता पर हाथ न उठाओ, बाकी सारी मांगें पूरी कर दी जायंगी। लेकिन प्रजातन्त्र सरकार के परराष्ट्र मन्त्री ने कहा:—"सैकड़ों वर्षों से सन्तोषी और शान्तिप्रिय प्रजा ने मंचू राजवंश की परीक्षा की है, पर वह सदा ही दोषपूर्ण पाया गया। उसने भूतकाल में जितने

वचन दिये, वे सब झूठे और धोखे निकले, भविष्य के लिए जो वचन दे रहा है, वह भी तत्त्वहीन हैं और उन पर विश्वास नहीं किया जा सकता। ....हम संसार में मनुष्य होने के लिए लड़ रहे हैं ; हम एक दुराचारी, दुराग्रही, प्रजापीड़क शासन को दूर करने के लिए लड़ रहे हैं, जिसने चीन को निर्धन और अपमानित कर दिया है और संसार की घड़ी की सुई पीछे कर दी है।" मतलब यह कि विरोधी किसी भी समझौते के लिए तैयार न थे।

विद्रोही दल इस सन्धिकाल में भी अपना सैनिक बल बढ़ाने पर लगा हुआ था। प्रजातन्त्र सरकार शासन प्रबन्ध से भी उदासीन न थी। २१ दिसम्बर को १६ प्रान्तों के ३० प्रतिनिधियों ने नानकिंग में एकत्र होकर संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की शासनपद्धति के आधार पर नया विधान बनाने का निश्चय कर लिया। नयी सरकार का राष्ट्रपति कौन हो, यह भी विवाद का विषय नहीं था। सब को डा० सनयात सेन की लोकप्रियता, योग्यता व नेतृत्वशक्ति पर पूर्ण विश्वास था। उन्हें ही राष्ट्रपति नियत किया गया और इंगलैंड में तार द्वारा उन्हें इसकी सूचना भी दे दी गई। तब तक उनके योग्य सेनापति हुआंग राष्ट्रपति का काम करने लगे।

डा० सनयात सेन को जब तार मिला, वे लण्डन से एकदम रवाना हो गये। सिंगापुर, हांगकांग, शंघाई, जहां जहां वे पहुंचे, उनका खूब स्वागत किया गया। नानकिंग पहुंचने पर तोपों

की सलामी द्वारा उनका स्वागत किया गया। राष्ट्रपति का आसन ग्रहण करते समय डा० सन ने शपथ खाई कि वह यथा-शक्ति मंचू शासन का मूलोच्छेद करने और नवीन प्रजातन्त्र शासन को स्थायी व सुदृढ़ बनाने का उद्योग करेंगे। डा० सन ने सम्राट् को भी एक तार भेजा कि यदि वे पदत्याग करदें, तो उनके परिवार का उचित प्रबन्ध कर दिया जायगा। अन्य राष्ट्रों के नाम भी डा० सन ने पुराने और नये शासन की तुलना करते हुये एक सन्देश भेजा था—"शान्ति और सद्भाव का सन्देश भेज कर चीन का प्रजातन्त्र आशा करता है कि वह अन्य राष्ट्रों के कुटुम्ब में सम्मिलित कर लिया जायगा।"

डा० सन के आ जाने से प्रजातन्त्रवादी विद्रोहियों का बल बहुत बढ़ गया, लेकिन अभी तक चीन में प्रजातन्त्र बाकायदा स्थापित नहीं हुआ था, मंचू सम्राट् की सरकार कायम थी और सभी राष्ट्र उसे ही बाकायदा सरकार मानते थे। इसलिए युआन और विद्रोहियों में सन्धिचर्चा जारी थी।

युआन शि काई अत्यन्त महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। वह वस्तुतः न राजतन्त्र का पक्षपाती था, न प्रजातन्त्र का। वह अवसरवादी था। वह दोनों से मिले रहना चाहता था। दोनों दल भी यह जानते थे, लेकिन फिर भी उसे मिलाये रखना चाहते थे। उसका सहयोग किसी भी दल की शक्ति बढ़ाने के लिये पर्याप्त था। उसने जब देखा कि प्रजातन्त्रवादी विद्रोही अपनी बात से हटने को तैयार नहीं है, तब वह भी प्रजातन्त्रवादी हो गया। इस

एक मात्र अवलम्ब के भी हाथ से निकलने पर सम्राट् की सरकार को विवश होकर निम्नलिखित घोषणा करनी पड़ी —

"विद्रोही सेना के, जिस के साथ कि प्रान्तों की प्रजा भी सहमत थी, विद्रोह के कारण साम्राज्य उबलती हुई कढ़ाई की भांति आंदोलित हो रहा था और प्रजा कष्ट पा रही थी। इसलिए युआन शि काई ने विद्रोहियों के पास प्रतिनिधि भेजे कि वे एक जातीय सभा स्थापित करने का निश्चय करें, जो भावी शासन-पद्धति पर विचार करे। महीनों बीत गये, पर कुछ निश्चय न हुआ और अब यह स्पष्ट है कि अधिकांश जनता प्रजातन्त्र के पक्ष में है। लोगों की हार्दिक इच्छा से ईश्वर की इच्छा का पता लगता है। मैं एक वंश की महत्वाकांक्षा के लिये करोड़ों की इच्छा का कैसे विरोध कर सकता हूं। इसलिए हम — राजमाता और मैं — देश का स्वाम्य प्रजा को देते हैं। युआन शी काई को चाहिये कि एक अस्थायी शासन संगठित करे और प्रजातन्त्र-वादियों से मिल कर एकता के ऐसे उपाय निकाले, जिनसे साम्राज्य में शान्ति फैले और मंचू, चीनी, मंगोल, मुसलमान व तिब्बती के मेल से एक महान् प्रजातन्त्र बने।"

यह राजत्याग की घोषणा १२ फरवरी १९१२ ई० को की गई। करीब २५० वर्ष के जोरदार शासन के बाद चीन के रंग-मंच से मंचू वंश का खातमा हुआ। एक चीनी कहावत के अनु-सार "वे (मंचू) शेर की सी दहाड़ मचाते हुए आये और सांप की दुम की तरह गायब हो गये।"

इसी १२ फरवरी के दिन नये प्रजातन्त्र की राजधानी नानकिंग में जहां पहले मिंग बादशाह (मंचुओं से पहले राज्य करने वाले चीनी राजवंश) की समाधि थी, एक विशेष समारोह किया गया। नये राष्ट्रपति ने अन्य सब लोगों के साथ नंगे सिर भक्तिपूर्वक समाधि के सामने प्रणाम किया और धूप आदि सुगन्धित द्रव्य जला कर प्रार्थना की। एक हृदयस्पर्शी भाषण में उन्होंने विदेशी शासन और अत्याचारी सरकार से मुक्त होने की उल्लासदायक कहानी का वर्णन करते हुए कहा कि—"हम पूर्वी एशिया को प्रजातन्त्र शासन के लिए दीक्षित कर रहे हैं।" समस्त चीन में आज का स्वतन्त्रता दिवस बहुत समारोह से मनाया गया।

डा० सन का महान् त्याग

डा० सनयात सेन के जीवन का मुख्य उद्देश्य पूरा हो गया था। लेकिन अभी तक युआन शि काई को प्रजातन्त्र का दृढ़ पक्षपाती बनाना आवश्यक था। बिना उसे राष्ट्रपति बनाये शान्ति कायम न हो सकती थी। मंचू सरदार, अनुदार श्रेणी और राज्याधिकारी उसे ही राष्ट्रपति बनाने के पक्ष में थे। उच्च पद न मिलने पर वह स्वयं भी असन्तोष का कारण हो सकता था। डा० सन ने गृहयुद्ध को रोकने के लिए वह कार्य किया, जिससे उनका नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा। उन्होंने कहा कि यदि युआन शि काई प्रजातन्त्र का कार्य संभालने का वचन दें, तो मैं उनके

पक्ष मे राष्ट्रपति पद से स्तीफा दे दूं। इतने प्रयत्नों के बाद राष्ट्र ने जो सन्मान उन्हें दिया था, उसे राष्ट्र के नाम पर राष्ट्र के हित के लिए उन्होंने निर्लिप्त सन्त की भांति त्याग दिया। १४ जनवरी को युआन शि काई राष्ट्रपति हो गये। उत्तर में अभी तक विद्रोह की सम्भावना थी, इसलिये पेकिंग में ही प्रजातन्त्र की राजधानी बनाई गई, ताकि उत्तर में उठने वाले विद्रोह का दमन किया जा सके।

चीन में प्रजातन्त्र की स्थापना के साथ संसार के सभी देशों का ध्यान उधर खिच गया। एशियायी देशों के लिए तो यह घटना बहुत महत्वपूर्ण थी। चीन पहला एशियायी राष्ट्र था जिस ने राजतन्त्र को नष्ट कर प्रजातन्त्र की पद्धति अपनाई।

छठा अध्याय

प्रजातन्त्र के बाद

लेकिन अभी चीन की विपत्तियों का अन्त नहीं हुआ था। युआन शी काई अत्यन्त महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। वह प्रजातन्त्र में सम्मिलित हुआ ही इसलिए था कि उसमें रह कर वह अपना प्रभाव बढ़ा सकता था। परन्तु नई पार्लमेंट के अनेक सदस्य उस की इस उन्नति में बाधक थे। वे राष्ट्रपति को भी निरंकुश अधिकार देने के विरोधी थे। युआन ने ऐसे अनेक सदस्यों को किसी न किसी बहाने गिरफ्तार करा दिया और फिर पार्लमेन्ट मे यह प्रस्ताव पास करा लिया कि उन्हें स्थायी राष्ट्रपति बना दिया जाय। इसका अर्थ था कि पार्लमेंट के सदस्यों व मन्त्रियों में भले ही

परिवर्तन होता रहे, लेकिन राष्ट्रपति वे ही रहेंगे। अपनी स्थिति इस तरह दृढ़ करके उन्होंने अपने अधिकारों के लिए कोशिश शुरू की। उन्होंने देखा कि जब तक पार्लमेण्ट रहेगी, कुछ न कुछ विरोध की सम्भावना बनी ही रहेगी, अतः उन्होंने पार्लमेण्ट तोड़ दी और उसके स्थान पर सलाहकार बोर्ड कायम किया। इसका अर्थ था कि राजसत्ता फिर से आ गई थी। युआन कहलाते तो अब भी सभापति थे, लेकिन उनकी सत्ता किसी स्वेच्छाचारी नरेश से कम न थी। धीरे धीरे वे सम्राट् बनने की तैयारी करने लगे। डा० सन आदि ने इसके विरुद्ध भी विद्रोह किया, लेकिन युआन ने उन्हें परास्त कर दिया। इस पर डा० सन अपने कुछ साथियों के साथ जापान चले गये और स्थिति का निरीक्षण करने लगे। अब युआन का मार्ग और भी साफ हो गया था। उनकी प्रेरणा से उनके साथियों ने आन्दोलन जारी किया कि उन्हें ही सम्राट् बनाया जाय। कुछ सभाओं से ऐसे प्रस्ताव भी आने लगे। दो तीन बार लोगों को दिखाने के लिए अस्वीकार करने के बाद चौथी बार उक्त प्रस्ताव आने पर १३ दिसम्बर १९१५ को वे गद्दी पर बैठ गये। सम्राट् की उपाधि तो धारण न की, लेकिन उनका आचरण सम्राट् की तरह होने लगा। १ जनवरी १९१६ से उन्होंने हुंग हि येन (महाविधान) नामक नया सम्वत् चलाया। बहुत से लोगों को ड्यूक, प्रिंस, बैरन आदि की उपाधियां भी दी गईं। जब उनकी इन कार्रवाहियों का विरोध होने लगा, तो उसका दमन करने के लिये उन्होंने विदेशी राष्ट्रों से ढाई करोड़

पौंड ऋण लिया और उसके बदले में नमक से होने वाली आय और समुद्री कर से होने वाली बचत विदेशी राष्ट्रों के पास रहन रख दी। इन्हीं वर्षों में चीन को जापान की अत्यन्त अपमान-कारक सन्धि स्वीकार करनी पड़ी, जिसका उल्लेख हम आठवें अध्याय में करेंगे। अन्य भी कई विदेशी राष्ट्रों ने बलपूर्वक बहुत सी अनुचित रियायतें प्राप्त कर लीं। युआन शी काई को उन सब पर स्वीकृति देनी पड़ी।

फिर गृह-युद्ध

डा० सन और उनके पुराने क्रान्तिकारियों ने देखा कि यह पुरानी बला छूट कर भी नहीं छूटती, तब उन्होंने जापान से आकर २५ दिसम्बर को दक्षिण में पृथक और स्वतन्त्र प्रजातन्त्र घोषित किया। वे गृहयुद्ध से देश को बचाने के लिये ही अलग हुए थे, लेकिन यह अत्याचार भी तो सहन नहीं कर सकते थे। इसलिये दक्षिणी चीन में विवश होकर यूआन शी काई के विरुद्ध विद्रोह करना पड़ा। कुछ समय तक उत्तरी और दक्षिणी सरकारों का गृहयुद्ध जारी रहा। ६ जून १९१६ को यूआन शी काई की मृत्यु होने से यह झगड़ा शान्त हो गया, लेकिन उत्तर और दक्षिण चीन के निवासियों में नीति के सम्बन्ध में मतभेद बना रहा। यूरोप के विगत महासमर में भाग लेने के प्रश्न पर फिर उत्तर और दक्षिण चीन में मतभेद हो गया। चीन में दो सरकारें बन गईं। उत्तर और दक्षिण की सरकारें बरसों तक कायम रहीं

और परस्पर लड़ती झगड़ती और सन्धि करती और कभी फिर लड़ाई करती रहीं। इन दोनों सरकारों के अलावा विभिन्न प्रान्तों के सैनिक शासक भी काफी प्रबल थे। इन्हें तुखन कहते थे। ये प्रान्तीय शासक भी परस्पर शक्ति की होड़ करते रहते थे। इस तरह बरसों तक चीन गृहयुद्ध की अग्नि में जलता रहा। कभी उत्तर दक्षिण में लड़ाई हो रही है तो कभी तुखनों में परस्पर जंग छिड़ा हुआ है। साम्राज्यवादी शक्तियां चीन की इस आपसी फूट से खूब फायदा उठाने लगीं। वे कभी एक पार्टी का और कभी दूसरी पार्टी का साथ देकर और कभी तीसरे तुखन की सहायता करके स्वयं लाभ उठाने लगीं। जिस तरह भारत में अंग्रेजों ने देसी राजाओं की पारस्परिक फूट से लाभ उठाया था, ठीक उसी तरह चीन में विदेशी शक्तियां अपना अपना लाभ उठाने लगीं। ये तुखन भी अपनी निजी सेनायें संगठित करते थे, प्राइवेट टैक्स लगाते थे और लड़ाइयां जारी रखते थे। इन सब का बोझ पड़ रहा था चीन की दरिद्र जनता पर। इधर कुछ सैनिक अधिकारियों ने कैण्टन की सरकार में भी बहुत प्रभाव बढ़ा लिया था और सनयात सेन वास्तविक सुधार करने में अपने को असमर्थ पाकर शांघाई चले गये। वहीं से वे चीन के पुनर्निर्माण की योजनायें बनाने और उनका प्रचार करने लगे। उनके इस प्रचार कार्य का चीन की शिक्षित और व्यापारिक श्रेणियों पर काफी असर पड़ा।

गत महासमर की समाप्ति पर वार्सेई की सन्धि कान्फ्रेन्स में

जब महाशक्तियों ने चीन की न्यायोचित पुकार भी न सुनी और उसे व्याघ्र जापान के शिकार के लिए खुला छोड़ दिया, तो कुछ समय के लिए उत्तरी और दक्षिणी चीन मिल गये, लेकिन कुछ समय बाद फिर वही गृहयुद्ध शुरू हो गया। एकबार सनयात सेन फिर किसी तुखन के बुलाने पर कैण्टन पहुंचे, पर चेन चिउंग मिंग ने उन्हें फिर १९२२ में बाहर जाने पर विवश कर दिया। यही दिन थे, जब बोलशेविक रूसी राजनीतिज्ञ चीन में फिर सम्बन्ध स्थापित करने लगे थे। इससे पहले ही वे चीन में अपने सब विशेषाधिकार छोड़ने की घोषणा कर चुके थे और मंगोलिया में अपना प्रभावक्षेत्र कायम कर चुके थे। अब रूसी दूत जौफे शांघाई में सनयात सेन से मिलने पहुंचा। यहीं से उनकी रूस से मैत्री शुरू हुई। यद्यपि उन्होंने बोलशेविज्म को स्वीकार नहीं किया, तथापि उसके आदर्शों की ओर उनका झुकाव हो गया था।

चांगकाई शेक

जब फरवरी १९२३ में चेन चिउंग मिंग के परास्त होने पर वे कैण्टन पहुंचे, तब उन्होंने अपने एक युवक साथी को रूस की सैनिक पद्धतियां सीखने के लिए रूस भेजा। यह युवक चीन के भावी इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण भाग लेने वाला था। इसका नाम था चांग काई शेक। चांग काई शेक का जन्म १८८७ ई० में निंगपो के पास एक छोटे से शहर में हुआ था। चांग के पिता

चाय और नमक का व्यापार करते थे। चांग के बचपन में पिता का देहान्त हो गया था। बचपन में चांग की सैनिक प्रवृत्तियां देख कर माँ ने जिस किसी तरह पाओटिंगफू सैनिक विद्यालय में उसे दाखिल करा दिया। कुछ समय टोकियो में भी आपने शिक्षा पाई। जापान में रहते हुए ही चांग का परिचय सनयात सेन और उसकी संस्था से, जिसका नाम १६११ में तुंग मेंग हुइ से कुओ मिन तांग हो गया था, हुआ। १६११ में प्रजातन्त्र की सेनाओं के साथ चांग काई भी सहकारी सेनापति के नाते लड़ा था। १६१३ में भी युआन शी काई के विरुद्ध होने वाले विद्रोह में चांग ने सनयात का साथ दिया था और उसी के साथ कैण्टन छोड़ कर जापान चला गया था। सनयात की सब विपत्तियों में चांग ने पूरा साथ दिया। कुछ समय तक शांघाई में रह कर चांग ने व्यापार करके काफी धनोपार्जन किया, लेकिन सब कुछ राष्ट्रीय क्रांति के लिए सनयात को दान दे दिया। यदि सन उसकी नीति पर विश्वास करते, तो उन्हें चेन चिउंग मिंग से परास्त न होना पड़ता। इस घटना से सन का चांग की रणकुशलता पर और भी विश्वास होगया। इसीलिये कैण्टन आने पर उन्होंने वर्तमान युद्धविद्या में और भी पारंगत होने के लिए चांग को रूस भेजा।

इधर चांग रूस गया, उधर माइकेल बौरोडिन नामक रूसी नीतिज्ञ कैण्टन पहुंचा। उसकी सहायता से सन ने कुओ मिन तांग का नये सिरे से संगठन किया। इसका संगठन रूस की

कम्युनिस्ट पार्टी के आधार पर किया गया था, अन्तर यही था कि इसमें सभी अमीर-गरीब को वोट देने का अधिकार था। सन ने केंगटन में शान्ति और अमन कायम करने व प्रजा की विविध उन्नति के लिए पूर्ण प्रयत्न किया।

सन के तीन सिद्धान्त

जनवरी १९२४ में डा० सन ने पहली राष्ट्रीय कांग्रेस बुलाई। इसमें उन्होंने तीन सिद्धान्तों द्वारा अपना विस्तृत कार्य-क्रम पेश किया। वे सिद्धांत निम्न-लिखित हैं:—

१. **राष्ट्रीयता**—चीन का विदेशियों के चंगुल से तभी छुटकारा हो सकता है, जब असमानता की सन्धियां रद्द कर दी जायं। इन संधियों के रद्द होने से ही चीन को जहाजी चुंगी पर अधिकार करने का अवसर मिलेगा और वह आयात-निर्यात के बन्धनों से मुक्त हो सकेगा।*

* चीन कृषि-प्रधान देश है। वहां की ७०-८० प्रतिशत प्रजा खेती पर निर्भर रहती है, इस कारण वहां की सरकार की सबसे बड़ी आमदनी जहाजी चुंगी से होती है। उस पर बिना अधिकार किये केन्द्रीय शक्ति मजबूत नहीं हो सकती। उसके बिना कला-कौशल की वृद्धि नहीं हो सकती और न मज़बूत सेना ही रखी जा सकती है। यह इस समय तक विदेशियों के कब्जे में थी। चीन का कर्ज गत ७५ वर्षों में बहुत तेजी से बढ़ कर

२. प्रजा के राजनैतिक अधिकार—एक ऐसे साम्यवादी प्रजातन्त्र भावों वाली केन्द्रीय शक्ति की स्थापना हो, जिसमें लोगों को केवल प्रतिनिधि भेजने के ही नहीं, परन्तु शासन में परिवर्तन करने, उस पर टीका टिप्पणी करने और उसे बदल डालने तक का अधिकार हो।

३. लोगों के रहने का अधिकार—लोगों की अवस्था सुधारने और उन्हें भर पेट अन्न-वस्त्र देने के लिए इस प्रकार के कानून रहेंगे, जिससे मजदूरों की रक्षा हो सकेगी, देश के सभी व्यवसाय—रेल, नौका, खान, बैंक आदि राष्ट्रीय कर दिये जायेंगे। भोजन और जीवन की आवश्यक चीजों का नियन्त्रण हो सकेगा और गरीबों को शिक्षित किया जा सकेगा।

डा० सनयात सेन का देहान्त

१६२४ में चीन की दोनों सरकारों को एक करने की फिर चर्चा चली। दिसम्बर में सन भी उसमें सम्मिलित होने के लिए पेकिंग पहुंचे। अभी इस महत्वपूर्ण कांफरेन्स का काम समाप्त

तीस करोड़ पौंड होगया था। विदेशी साम्राज्यवादियों ने लड़ाइयों का हर्जाना तथा रेल इत्यादि बनाने का बहाना कर चीन पर यह कर्ज लाद दिया था। इसीकी वसूली के लिए उन्होंने उसके नाविक कर पर अधिकार जमा लिया था। इन्हीं ऋणों के कारण चीन अनेक विदेशी बैंकरों के अधिकार में भी चला गया था।

न हुआ था कि वे बीमार पड़ गये और १२ मार्च १९२५ को चीन के इस महान राष्ट्रनिर्माता का चीन की सेवा में अपनी समस्त आयु व्यतीत करने के बाद देहान्त होगया। उनके अवशेष पेकिंग के पास एक मन्दिर में रक्खे गये, जो पांच साल बाद नानकिंग में बहुत ही प्रतिष्ठा व आदर के साथ लाये गये और एक भव्य-समाधि में रक्खे गये। मृत्यु से पहले समस्त राष्ट्र के नाम आदेश के रूप में वे निम्नलिखित वसीयतनामा छोड़ गये :—

"पिछले चालीस वर्षों से लगातार मैं क्रान्ति के लिए उद्योग करता रहा हूं। इस लम्बी अवधि में मेरी एकमात्र कामना यही रही है कि हमारा देश भी अन्य राष्ट्रों की तरह स्वतन्त्र और समृद्ध बन सके। इन ४० वर्षों के अनुभव से मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि मेरी यह कामना तभी पूरी हो सकती है, जब हम जनसाधारण में पूर्ण रूप से जागृति पैदा कर सकें, और शोषित वर्ग के साथ कन्धे से कन्धा मिलायें।"

"क्रान्ति का काम अभी पूरा नहीं हो सका है। मेरा अपने साथियों से अनुरोध है कि कुओ मिन ताङ्ग पार्टी के आदेश और उसके प्रस्तावों पर वे अमल करें। हमें भरसक प्रयत्न करना है कि विदेशी राष्ट्रों से जो वञ्चनामय सन्धियां चीन की पिछली गवर्नमेन्ट ने की हैं, उन्हें हम भंग करा दें। हम नहीं चाहते कि विदेशी राष्ट्र जबरदस्ती चीन का शोषण करें। राष्ट्र के लिये यही मेरी हार्दिक प्रेरणा है।"

सातवाँ अध्याय

राष्ट्रीय दल में फूट

डा० सनयातसेन की मृत्यु के बाद कुओमिनतांग में ऐसा कोई प्रभावशाली नेता न रहा, जो उस दल में विभिन्न प्रतिस्पर्धी दलों को परस्पर लड़ने झगड़ने से रोक सके। इस दल में दो पक्ष थे। उग्रपक्ष कम्यूनिस्टों के मार्ग पर चलने और रूस से अधिकाधिक सम्बन्ध कायम रखने का पक्षपाती था, जब कि दक्षिण पक्ष इसका विरोधी था। दक्षिणी पक्ष ने अपना प्रभाव पार्टी में बहुत कम होने के कारण पेकिंग के पास एक नई कुओ मिन तांग की स्थापना कर डाली। लेकिन इससे उग्र पक्ष की समस्या नहीं सुलझी। सोशलिज्म, कम्यूनिज्म, रैडिकलिज्म आदि अनेक वादों के कारण

कभी इस प्रकार के उग्रपन्त में एकता कायम नहीं रह सकती। हर एक अपने अपने वाद को ही अधिक महत्व देता है। कुओ मिन तांग के उग्र पक्ष में भी अनेक दल थे। वे परस्पर लड़ते झगड़ते रहते थे। बौरोडिन के एक साथी लिआओ चुंग काई को दूसरे दल वालों ने हत्या कर डाली, इससे विद्वेष और भी बढ़ गया। हु हान मिन नामक नेता रूस चले गये। इन दो प्रभावशाली व्यक्तियों के निकल जाने से पार्टी की वास्तविक शक्ति बोरोडिन और चांग काई शेक के दलों के हाथ में आ गई, पर ये दोनों भी एक दूसरे के सख्त विरोधी थे। दोनों साथ साथ काम करते थे, लेकिन दोनों एक दूसरे को कुचल देना चाहते थे। चांग यद्यपि सनयातसेन के तीन सिद्धान्तों के अनुयायी था, तथापि कम्यूनिस्ट न था। लेकिन वह यह भी जानता था कि संगठन, प्रचार और युद्ध सामग्री में रूस की सहायता के बिना उत्तरी चीन के तुखनों को नहीं दबाया जा सकता। दूसरी ओर बोरोडिन भी जानता था कि अभी चीन में कम्यूनिस्टों का बल बढ़ने की कोई सम्भावना नहीं है। इसलिये दोनों एक साथ काम करते रहे। अब विदेशी राष्ट्रों के अनुचित विशेषाधिकारों के विरुद्ध कुओ मिन तांग पार्टी का आन्दोलन जारी होने लगा। यह आन्दोलन सिर्फ दक्षिणी चीन में ही नहीं, परन्तु समस्त चीन में फैल गया। इसी समय एक ऐसी घटना हो गई, जिससे चीन में इस आन्दोलन को और भी बल मिल गया। ३० मई १९२५ को अंग्रेज सिपाहियों ने विदेशियों के विरुद्ध प्रदर्शन करने वाले शांघाई के

कुछ विद्यार्थियों पर गोली चला दी। कुछ विद्यार्थी मर गये और बहुत से घायल हो गये। इसके भी २०-२५ दिन बाद इससे भी बड़ा एक और कांड अंग्रेजों की ओर से हो गया। इससे समस्त चीन में-उत्तर और दक्षिण दोनों में असन्तोष की तीव्र लहर फैल गई और जनता चीन को एक करने की आवाज उठाने लगी।

चीन का एकीकरण

कैण्टन की सरकार ने इस अवसर का बहुत अच्छा लाभ उठाया। चीन को एक करने के नाम पर उसने चांग काई शेक के सेनापतित्व में उत्तरी चीन पर आक्रमण कर दिया। कैन्टन से केवल ५०-६० हजार सेना चली थी, परन्तु जब वह ब्रू हन और शांघाई पहुंची, तो उसकी संख्या दो लाख हो गई। उत्तरी तुखनों की सेना रुपये के लिये लड़ रही थी, जब कि कैण्टन सरकार की सेना राष्ट्रीयता के नाम पर लड़ रही थी। उत्तरी चीन की जनता को पूर्ण सहानुभूति इस सेना के साथ थी, इसलिये वह जहां गई, उसे जनता की ओर से सब प्रकार की सहायता भी मिलती गई और लड़ने के लिये सैनिक भी। चांग काई शेक ने शांघाई से हैंको तक यांगत्सी के दोनों तटों के शहरों पर अधिकार कर लिया। इसके बाद चांग काई शेक ने किआंगसी की राजधानी नानचुंग जीत कर वहीं अपना प्रधान केन्द्र बना लिया। चांग काई शेक के कैण्टन से दूर चले आने के कारण बोरोडिन और उसकी पार्टी का वहां स्वतन्त्र राज्य हो गया। इस पार्टी के

आपसी विरोध फूट पड़ा

हैंको के विजय के बाद शांघाई की बारी थी । शांघाई अपने समृद्ध व्यापार और व्यवसाय के कारण बहुत धनी शहर था। इसे भी विजय करने से चांग काई शेक का बल बहुत बढ़ जाता, इसलिए हैंको की बोरोडिन पार्टी ने कुओ मिन तांग के नाम से सेनापति चांग काई को शांघाई पर आक्रमण न करने की सलाह दी। इधर चांग को यह भय था कि यदि बोरोडिन पार्टी स्वयं शांघाई पर आक्रमण कर ले और आवेश में आकर विदेशियों की हत्या भी शुरू कर दे, तो विदेशी राष्ट्र कुओ मिन तांग ही नहीं, चीन की समस्त राष्ट्रीय सेना को नष्ट-भ्रष्ट कर डालेंगे और इस तरह पिछले सालों में चीन ने जो उन्नति की है, उस पर पानी फिर जायगा। यह सोच कर उसने शांघाई के लिए कूच कर दिया। उधर बोरोडिन पार्टी ने उसे शांघाई की ओर जाने से रोकने के लिये हुनानी सेना को हुक्म दिया कि वह जाकर नानकिंग पर कब्जा कर ले। नानकिंग उन दिनों चांग काई के हाथ में था। उस पर आक्रमण करना ऐसी घटना थी, जिस से दोनों पार्टियों के अन्दर का विरोध बाहर भी फूट निकला। हुनानी सेना ने नानकिंग जाकर विदेशियों की हत्या भी शुरू कर दी। कुछ लोगों का कहना है कि यह हत्याएं चांग काई को विदेशियों में अप्रिय करने के लिये जानबूझ कर की गई थीं। इन हत्याओं से चांग भी उत्तेजित हो उठा और उसने इनका बदला लेने व विदेशियों में प्रिय बनने के लिए शांघाई में कम्यूनिस्टों पर हमला बोल

दिया। बहुत से कम्यूनिस्ट मारे गये। इसके बाद उसने नानकिंग से हुनानी सेना को निकाल दिया और १६ अप्रैल को कुओ मिन तांग के नरमदली सदस्यों के समर्थन और सहयोग से वहां नई सरकार कायम करली। इस पर बोरोडिन दल के बहुमत की सहायता से कुओ मिन तांग ने चांग काई शेक को अपनी पार्टी से निकाल दिया। यहीं से कम्यूनिस्टों व नानकिंग सरकार में उस भीषण युद्ध का सूत्रपात होता है, जिस में लाखों चीनी मारे गये और जिस ने बहुत बरसों तक चीन को एक कदम भी आगे बढ़ने नहीं दिया।

वस्तुतः यह आश्चर्य की बात है कि चांग काई शेक जैसा डा० सनयात सेन का पुराना साथी और चीन का सच्चा हितैषी मज-दूरों व किसानों का दुश्मन हो गया। उसके सामने सदा सनयात के तीन आदर्श उपस्थित रहते थे। उससे यह सम्भावना नहीं की जा सकती थी कि वह कभी मजदूरों व किसानों का कत्ले आम करने का हुक्म देगा। लेकिन परिस्थितियां बहुत समय ऐसा काम करने पर विवश कर देती हैं, जो अपनी इच्छा के विपरीत हो। बोरोडिन प्रभृति रूसी सलाहकार चीन में रूस की भांति कम्यूनिज्म स्थापित करना चाहते थे, जैसा कि बाद की उनकी कार्रवाहियों से स्पष्ट भी हो गया। चांग समझता था कि अभी कम्यूनिज्म की चर्चा का समय नहीं है। अभी चीन एक राष्ट्रीय सरकार के नीचे तो संगठित हो जाय, फिर देखा जायगा। उसकी सम्मति में उन दिनों कम्यूनिज्म के आन्दोलन का परिणाम होता

चीन के बड़े-बड़े व्यापारियों, प्रभावशाली तुचनों और विदेशी राष्ट्रों द्वारा चीन की राष्ट्रीय प्रगति की समाप्ति। इसलिये वह दृढ़ता से इस आंदोलन का दमन करने में लग गया। यह देखकर शांघाई के धनाढ्यवर्ग का उसकी सहायता करना स्वाभाविक था। उनकी सहायता पाकर और हैंको सरकार का रुख देखकर वह और भी उत्तेजित हो गया और कम्यूनिस्ट-दमन में उचित अनुचित का ख्याल भी भूल गया। वह धनीवर्ग के हाथों खेलने लगा।

कम्यूनिस्ट क्रान्ति का प्रारम्भ

इधर कम्यूनिस्टों ने कुओ मिन तांग में चांगकाई शेक के विरोध से छुट्टी पाकर अपने कम्यूनिस्ट कार्यक्रम को अमल में लाना शुरू कर दिया। जमींदारों की जमीनें छिनने लगीं, कारखानों में हड़तालें होने लगीं। कुओ मिन ताँग के अनेक सैनिक अफसर जमींदार भी थे, वे इस नये कार्यक्रम के विरुद्ध हो गये। लेकिन रूस की थर्ड इन्टरनेशनल से जैसी आज्ञाएं आ रही थीं, रूसी सलाहकार भी वैसा ही करा रहे थे। भारतीय पाठकों को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि श्री मानवेन्द्रनाथ राय, जो आजकल बम्बई में इण्डिपेंडेण्ट इण्डिया के सम्पादक हैं, उन दिनों हैंको में कम्यू-निस्ट क्रांति के प्रमुख संयोजकों में से एक थे। कम्यूनिस्ट क्रान्ति के कारण फेंग यू सियांग आदि अनेक उग्रदली नेता भी बोरोडिन से नाराज हो गये। इन लोगों ने हैंको पर अधिकार कर लिया और कम्यूनिस्टों को वहां से खदेड़ दिया। इस के एक सप्ताह

बाद ही बोरोडिन आदि रूसी सलाहकार भी चीन में दाल गलती न देखकर रूस चले गये। इसके साथ ही चीन को साधन बनाकर संसार में बोलशेविक क्रांति करने का रूस का स्वप्न भी समाप्त हो गया।

चीन एक हो गया

परन्तु इतने मे ही चांग काई शेक की विपत्तियों का अन्त नहीं हो गया था। कम्यूनिस्टों ने दो एक बार नानकिंग पर आक्रमण करने की चेष्टा की, एक दो बार उन्हें कुछ सफलता भी हुई, चांग काई शेक को हार कर जापान भी भाग जाना पड़ा, लेकिन जनवरी १९२८ मे कुओ मिन तांग के नरमदलियों की सहायता पाकर वह फिर नानकिंग पहुंच गया। इस समय तक कुओ मिन तांग से कम्यूनिस्ट निकल से गये थे। वस्तुतः वे अपनी जल्दबाजी के कारण ही निकाले गये थे। अभी तक चीन कम्यूनिज्म जैसे क्रान्तिकारी वाद को नहीं समझ सका था। कुओ मिन तांग ने चांगकाई शेक को फिर प्रधान सेनापति और केन्द्रीय शासन-समिति का प्रधान बनाया। सम्पूर्ण सरकार का पुनः संगठन किया गया, सनयात सेन के तीन सिद्धान्तों पर विश्वास प्रकट किया गया और कम्यूनिज्म की निन्दा की गई। अब चांग की स्थिति सुदृढ हो चुकी थी। उसने शेष उत्तरी चीन को भी कुओ मिन तांग के झण्डे तले लाने का यत्न किया। जून १९२८ में मंचूरिया के तुक्चन चांग सो लिन के, जो पेकिंग पर हावी हो गया

था, हार जाने से पेकिंग भी नानकिंग सरकार के हाथ आ गया। इससे पहले चीन की कोई क्रांति भी समस्त चीन को एकत्र न कर सकी थी। चांग काई शेक अभी और भी मचूरिया की ओर बढ़ता, लेकिन जापान से संघर्ष बचाने के लिये वह आगे नहीं बढ़ा। चांग सो लिन भाग कर मुकदन जा रहा था, कि गाड़ी में किसी ने बम फेंक कर उसकी हत्या कर डाली। पेकिंग के विजय के बाद चांग काई शेक की सरकार इतनी प्रबल हो गई कि अन्य सब राष्ट्रों ने भी इसे चीन की बाकायदा सरकार स्वीकृत कर लिया। आज भी चांग काई शेक की इसी सरकार के साथ जापान युद्ध कर रहा है, लेकिन जापान युद्ध की कहानी अगले अध्यायों में पढ़िये। यहां इतना कह देना पर्याप्त होगा कि पेकिंग पर अधिकार करने के बाद उत्तरी चीन में कोई ऐसा प्रभावशाली तुख़न न था, जो नानकिंग सरकार के लिए विशेष चिन्ताजनक समस्या का कारण बनता, लेकिन यह नहीं समझना चाहिये कि इससे नानकिंग सरकार की समस्याओं का अन्त हो गया। उसे कम्यूनिस्टों से, जिन्होंने दक्षिण-पश्चिम में जाकर सोवियट प्रजातन्त्र स्थापित कर लिया था, बरसों तक संघर्ष करना पड़ा। इसी चिरकालीन संघर्ष के कारण वह अन्य दिशाओं में ध्यान न दे सका।

चीन के एक बहुत बड़े भाग में एकता स्थापित करके चांग काई ने सनयात सेन द्वारा निर्धारित क्रांति की तीन अवस्थाओं में से पहली अवस्था पार कर ली। विरोधियों को जीत कर

कुश्रो मिन तांग के झन्डे तले लाने के लिए सैन्य-शक्ति का प्रयोग किया गया था, उसे इसमें पूरी सफलता हुई।

विधान की कहानी

यह अध्याय समाप्त करने से पूर्व संक्षेप से चीन की वैधानिक प्रगति पर नजर डाल लेना भी अप्रासांगिक न होगा। युआन शि काई की मृत्यु के बाद अस्थायी विधान, जो १६११ में विद्रोही नेताओं ने तैयार किया था, काम में लाया जाने लगा। इसके बाद सन् १६२५ ई० तक एक विधान के बाद दूसरा विधान बनता रहा। कभी-कभी तो बने हुए विधान केवल कागज के टुकड़े मात्र रह गये। इन्हें कभी भी काम में न लाया गया। अन्त में सन् १६२५ ई० में चांग काई शेक की राष्ट्रीय सरकार ने एक नया कानून पास किया। इसमें कुल १० धारायें थीं। इसके अनुसार राष्ट्रीय सरकार ने १६३१ तक शासन किया। इस समय तक इसमें सात बार सुधार हुए। १६३१ ई० में इसमें १० के स्थान पर ५४ धारायें थीं।

सन् १६३१ में चीन में वैधानिक आन्दोलन ने बहुत जोर पकड़ा। जनरल चांग काई शेक ने डॉक्टर वांग युंग हुइ से विधान बनाने की प्रार्थना की। डा० वांग ने एक अस्थायी विधान १ जून सन् १६३१ को जारी किया। पर स्थायी विधान कई साल तक न बनाया जा सका। १६३४ में डा० सनफो के सभापतित्व में कानून-परिषद् ने एक विधान बनाया। पर यह भी बहुत समय

तक न चल सका। चीन का वर्तमान विधान ५ मई १६३६ ई० को तैयार हुआ था। यह विधान संसार के विभिन्न देशों के विधानों में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। चीनी राजनीतिज्ञों ने जो विचार प्रकट किये हैं, उनसे ज्ञात होता है कि इसे बनाने में चीन के निर्माता स्वः डा० सनयात सेन के प्रत्येक शब्द का पालन किया गया है।

इस विधान के अनुसार जनसभा के हाथ में ही सारी शक्ति केन्द्रित है। इसके दो हजार सदस्य होते हैं। इसे राष्ट्रपति चुनने या पदच्युत करने, और विधान में परिवर्तन करने के अधिकार प्राप्त हैं। जनसभा के अध्यक्ष को भी बहुत से अधिकार हैं। वह राष्ट्र का नायक समझा जाता है। उसकी अवधि ६ साल तक कोई उसका अधिकार छीन नहीं सकता। जल, स्थल व वायुसेना का वह प्रधान सेनापति समझा जाता है। किसी कानून को रोकने, सन्धि करने तथा असाधारण परिस्थितियों में उसे नये कानून बनाने के अधिकार प्राप्त हैं। चीन-विधान की एक विशेषता यह है कि कानून, शासन और न्याय के अलावा निरीक्षण व परीक्षा विभाग भी कायम किये गये हैं। निरीक्षण विभाग सब अधिकारियों की देख रेख करता है, किसी अयोग्य अधिकारी पर मुकद्दमा भी चला सकता है। परीक्षा-विभाग किसी अधिकारी की नियुक्ति से पूर्व परीक्षा लेता है। चीन सरकार की अर्थनीति का उद्देश्य जनता के जीवन व्यतीत करने का प्रबन्ध करना है। नागरिकों को शिक्षा आदि के पूर्ण अधिकार हैं।

इन दिनों चांग काई शेक और उनकी सरकार चीन के अन्य सब क्षेत्रों में उन्नति की ओर ध्यान देती रही। औद्योगिक, व्यापारिक, सामाजिक और शिक्षासम्बन्धी सभी क्षेत्रों में चीन उन्नति कर रहा है। यद्यपि चांग काई शेक को कभी कभी साम्य-वादियों का दमन करने में अपनी शक्ति लगानी पड़ी, तथापि वह चीन की उन्नति में भी पूर्ण प्रयत्नशील है। ४-५ साल पूर्व उसने डा० सनयात सेन की आत्मा की आराधना करते हुये कहा था—"तुम्हारे निर्धारित किये जनता के तीन सिद्धान्तों के अनु-सार क्रान्ति का क्षेत्र बड़ा ही विस्तृत है। सैन्य-शक्ति द्वारा सफ-लता प्राप्त कर लेना तो उसका बहुत छोटा अंग है। शांति के समय हम लोगों को देश के मानसिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सामाजिक पुनरुत्थान के लिये जितना प्रयत्न करना है, वह सैनिक क्रान्ति से दस गुना अधिक कठिन है। जब तक जनता के तीन सिद्धान्त पूर्ण रूप से पूरे नहीं हो जाते, हम लोग नहीं समझ सकते कि क्रान्ति खतम हो गई और हम लोगों ने अपना कर्तव्य पूरा कर लिया।"

ये महान् उद्देश्य पूरा करने की ओर चीन सरकार प्रयत्नशील है, लेकिन उसके मार्ग में जो राजनैतिक बाधायें आ रही हैं, वे ऐसी भीषण हैं कि चीन सरकार इस ओर बहुत ही कम ध्यान दे सकी है और इसके लिये उसे जरा भी दोष नहीं दिया जा सकता।

आठवां अध्याय

जापान की चीन पर गृध्रदृष्टि

पिछले अध्यायों में गत यूरोपीय महायुद्ध के प्रारम्भ तक के इतिहास पर हम एक नजर डाल चुके हैं और यह भी देख चुके हैं कि जापान तथा ब्रिटेन, फ्रान्स, जर्मनी तथा रूस आदि योरुप की बड़ी साम्राज्यवादी शक्तियां किस तरह चीन में लूटखसोट कर रही थीं। लेकिन युद्ध के कारण यूरोप की स्थिति अत्यन्त नाजुक होजाने से यूरोपियन शक्तियां चीन में अधिक दिलचस्पी न ले सकीं। वे आपसी लड़ाई में ही मशगूल हो गईं और जापान को इस शर्त पर मित्र राष्ट्रों ने चीन में खुली छुट्टी दे दी कि वह चीन से जर्मनी को निकाल डाले। जापान अनायास ही प्रतिस्पर्धी राष्ट्रों को चीन

से निकलते देख कर और उनका परवाना पाकर बहुत खुश हुआ। पहले तो वह कुछ करते संकोच भी करता था, अब उसे कोई रोकने टोकने वाला न रहा। वह खुल कर साम्राज्यवाद का नंगा नाच नाचा और ऐसा नाचा कि न केवल चीन 'त्राहि त्राहि' करने लगा है, लेकिन ब्रिटेन और अमेरिका भी परेशान हो गये हैं। उसका वह साम्राज्यवादी नरसंहारक ताण्डव आज भी चीन में जारी है।

युद्ध से पहले तक

जापान जब से साम्राज्यवादी दौड़ में शामिल हुआ, तभी से चीन पर उसकी नजर लगी। फ़ारमोसा के पास कुछ जंगलियों द्वारा जापानी मल्लाहों के मारे जाने का बहाना बना कर उसने फारमोसा पर आक्रमण कर दिया और चीन से ५,००,००० टेल दण्ड लिया। कोरिया पर जापान ने किस तरह कब्जा किया, इसका संक्षिप्त उल्लेख हम पहले कर आये हैं। कोरिया के सिल-सिले में ही चीन और जापान में १८९४ में युद्ध छिड़ गया। यह युद्ध चीन जापान की आगे आने वाली शृङ्खला की प्रथम कड़ी थी। इस युद्ध में चीन हार गया और जापान के लिए चीन का विजय करना आसान हो गया। १७ अप्रैल १८९५ को दोनों राष्ट्रों में शियोनिस्की स्थान पर समझौता हुआ। इसके अनुसार चीन ने कोरिया की स्वतन्त्रता स्वीकार की (२) चीन ने फार-मोसा और लियाओ टंग जापान को दिये (३) चीन ने सात सालों

में करीब ४५ करोड़ रुपया देना स्वीकार किया और वो हाई वी बन्दर जमानत के रूप में सात साल के लिए दे दिया (४) शिआई, सूचाऊ और हांगचाऊ में जापान को व्यापार करने आदि के अधिकार दिये गये। इसके बाद रूस के विरोध के कारण जापान को लिआओ टंग वापस करना पड़ा। जापान को उपर्युक्त भारी रकम चुकाने के कारण ही चीन को रूस, फ्रांस, ग्रेट ब्रिटेन और जर्मनी से भारी कर्ज लेना पड़ा और उसके बदले उन्हें कई विशेषाधिकार देने पड़े।

इसके बाद भी जापान चीन के मामलों में हस्तक्षेप करता रहा और अन्य विदेशी राष्ट्रों के साथ साथ वह भी चीन की लूट खसोट से लाभ उठाता रहा। रूस को हराकर जापान ने उससे जो सन्धि की, उसका निर्देश हम ऊपर कर चुके हैं। चीन से बिना पूछे उसके प्रदेश मंचूरिया को रूस और जापान ने बांट लिया। इसके बाद भी जापान चीन को दबाकर विशेषाधिकार लेता रहा। रेलवे-सम्बन्धी नये अधिकार लेकर उसने मंचूरिया के अन्दर घुसने का और भी अच्छा अवसर प्राप्त कर लिया। फूशुन और येनटाई की खानों को प्राप्त करके उसने मंचूरिया में अपनी आर्थिक स्थिति और भी दृढ़ कर ली।

जापान की २१ शर्तें

जब १९१४ में यूरोप में महासमर छिड़ गया, तब ब्रिटेन व फ्रांस आदि मित्र राष्ट्रों ने जापान का सहयोग भी प्राप्त करना

चाहा। जापान सहयोग पर तैयार हो गया, लेकिन वह ऐसा कोई काम न करना चाहता था, जिससे उसे व्यर्थ में जान गंवानी पड़े। उसने यूरोपीय रणक्षेत्र में न जाकर चीन से जर्मनी को निकालने का जिम्मा लिया और इसके लिए ब्रिटेन आदि मित्र राष्ट्रों ने जापान को मुंहमांगा इनाम दिया। उसे आश्वासन दिया गया कि शान्तुंग प्रायद्वीप उसे ही दे दिया जायगा। १८ अगस्त १९१४ को जापान ने जर्मनी को अल्टीमेटम भेजा कि वह जापान और चीन के किनारे स्थित समुद्रों और खाड़ियों में से अपने सैनिक जहाज वापस बुला ले और क्याओ चाओ जापान के सुपुर्द कर देवे, ताकि वह चीन को लौटा सके। इस अल्टीमेटम के कुछ दिन बाद जापान ने चीन में जरमनी के स्थानों पर मार-काट भी मचा दी। बेचारा चीन अपने ही देश में इस तरह दो देशों की लड़ाई देख कर भी चुप रहा। वह कर ही क्या सकता था? जापान ने जर्मनी को निकाल कर क्याओ चाओ पर अधिकार कर लिया, लेकिन जब चीन ने जापान से वह प्रदेश मांगा, तो जापान ने न केवल वह प्रदेश देने से इन्कार किया, परन्तु चीन के पत्र के उत्तर में अपनी ओर से २१ मांगें भी पेश कर दीं। चीन के गुड़ मांगने पर जापान ने उसे पत्थर मारा। इन २१ मांगों का आशय निम्नलिखित था:—

(१) शान्तुंग में जर्मनी के सब अधिकार जापान को दे दिये जावें। शान्तुंग से चि-फ़ी और क्यांगसू जाने वाली रेलों आदि के बनाने का जो अधिकार जर्मनों को दिया गया है, जर्मनी के

बाद वह जापानियों को ही प्राप्त हो (२) दक्षिणी मंचूरिया और पूर्वी मंगोलिया में रेलों का पट्टा २५ वर्ष से ६६ वर्ष तक के लिए बढ़ा दिया जाय। मंचूरिया में जापानियों को विशेषाधिकार दिये जांय। (३) यांग्सी तराई में लोहे के सबसे बड़े कारखाने में जापानियों की ही पूंजी लगाई जाय। (४) चीनी समुद्रतट की कोई खाड़ी, बन्दर या टापू किसी दूसरी शक्ति को ठेके पर न दिया जाय (५) चीन अपने यहां राजनीति, अर्थ और सेना-विभाग में जापानी सलाहकार नियुक्त करे, युद्ध आदि के लिए वह समस्त या कम से कम आधी आवश्यक सामग्री जापान से ले। इनके अलावा और भी कुछ शर्तें थीं।

इन शर्तों का स्पष्ट अर्थ था कि चीन जापान का गुलाम बन जाय। चीन ने जापान की इन मांगों का तीव्र विरोध किया। उसने मित्र राष्ट्रों से दया और सहानुभूति की अपील की। उसे ख्याल था कि जो इंग्लंड बेल्जियम की रक्षा के लिए जर्मनी से इतना भारी युद्ध कर सकता है, वह चीन की भी अवश्य रक्षा करेगा। लेकिन उसे क्या पता कि जापान मित्रराष्ट्रों के संकेत के आधार पर ही यह सब कर रहा था? २५ मई को जापानी राजदूत ने पेकिंग में चीनी परराष्ट्र सचिव से मनमानी शर्तों पर उसके हस्ताक्षर ले लिये। चीन ने पूरी तरह जापान के हाथ में अपने को अर्पित कर दिया।

मित्रराष्ट्रों ने जापान को शान्तुंग प्रायद्वीप और भूमध्य रेखा के उत्तर के जर्मन टापू दे देने का गुप्त वचन दिया था और दूसरी

और रूस ने जापान से गुप्त-सन्धि करके चीन में किसी तीसरी शक्ति को न आने देने का वचन दिया था। इन्हीं दिनों, जबकि चीन के विरुद्ध ऐसी गुप्त सन्धियां हो रही थीं, अमेरिका चीन को सत्य और न्याय के नाम पर युद्ध में सम्मिलित होने का निमन्त्रण दे रहा था। जापान ने अन्य सब मित्रराष्ट्रों से निश्चिन्त होकर अमेरिका से भी सन्धि की प्रार्थना की। दोनों में समझौता हुआ। इसके अनुसार दोनों राष्ट्रों ने चीन की स्वतन्त्रता कायम रखने और मुक्तद्वार व्यापार नीति पर चलने का वचन दिया। पर इसके साथ ही जापान के अनेक विशेषाधिकारों को भी अमेरिका ने स्वीकार किया। इस सन्धि का भी वास्तविक रहस्य पेकिंगस्थित तत्कालीन रूसी राजदूत ने इन्हीं दिनों बताते हुए कहा था—"चीन साम्राज्य को अक्षुण्ण रखने अथवा वहां मुक्तद्वार वाणिज्य स्थापित करने की नीति को जापान सरकार अधिक महत्वपूर्ण नहीं समझती। वाशिंगटन की बातचीन का मतलब यह नहीं है कि चीन के किसी एक विशिष्ट भाग में जापान को कोई विशिष्ट अधिकार प्राप्त है, बल्कि उसका मतलब यह है कि सारे चीन साम्राज्य में जापान को एक विशिष्ट स्थान प्राप्त होना चाहिये।" वस्तुतः यूरोपियन राष्ट्रों की डालियों ने अमेरिकन राष्ट्रपति विलसन के सब सिद्धान्तों को हवा में उड़ा दिया था। जापान ने दक्षिण मंचूरिया, लिआओ टुंग और शान्तुंग में दृढ़तापूर्वक अपना अधिकार जमा लिया। पर अब तक भी चीनी शांति-महासभा के बाद आने वाले स्वर्ण-युग का स्वप्न ले रहे

थे। मि० एस्क्विथ ने उन दिनों कहा था कि—"शान्ति महासभा के बाद एक ऐसे नये युग का प्रारम्भ होगा, जिस में संसार के सभी राष्ट्र मिल कर मित्र भाव से एक सङ्घ स्थापित करेंगे, जिस में संसार के सभी राष्ट्रों को स्वभाग्य-निर्णय का अधिकार प्राप्त होगा, जिस में आज तक किये हुये अन्याय और अत्याचार दूर किये जायँगे और जिस में उन महाशक्तियों को, जिन्होंने धोखा देकर, डरा धमका कर या मारपीट कर दूसरों के प्रदेश या अधिकार छीन लिये हैं, वे प्रदेश या अधिकार आदि लौटा लेने के लिए उन्हें विवश किया जायगा।"

युद्ध समाप्त हुआ और वर्सेलीज में शान्ति महासभा का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। उत्तरी और दक्षिणी चीनी सरकारों के प्रतिनिधि अपना भेदभाव भुला कर अत्यन्त हर्ष और उत्साह से उसमें सम्मिलित हुए। चीनी प्रतिनिधियों ने अपना मामला अत्यन्त योग्यता से पेश किया, लेकिन शान्ति महा सभा में उपस्थित चालाक और धूर्त सदस्यों पर क्या प्रभाव पड़ता? वे तो पहले ही गुप्त सन्धियों में चीन का भविष्य निश्चित कर चुके थे। चीन की कोई बात न सुनी गई। जापान ने चीन में अन्याय और बलात्कार द्वारा जो अधिकार प्राप्त कर लिये थे, उन पर सन्धि की १५६, १५७ और १५८ धाराओं के अनुसार शान्ति महासभा की भी मुहर लग गई। "वीरभोग्या वसुन्धरा।"

यह प्रकरण समाप्त करते हुये चीनी प्रतिनिधियों

की उस दुःख-कथा का कुछ अंश देना अप्रासांगिक न होगा, जो उन्होंने अत्यन्त निराशा के साथ शान्ति महासभा में सुनाई थी। इस से यूरोपियन राजनीतिज्ञों की कुटिलता, हृदय-हीनता और स्वार्थबुद्धि पर प्रकाश पड़ सकता है। इस वक्तव्य में कहा गया था :—

"मित्र राष्ट्र और उनके साथी संसार में न्याय और स्थायी शान्ति की स्थापना के लिए जिन उच्च सिद्धान्तों की घोषणा किया करते थे, उन्हीं सिद्धान्तों पर विश्वास रख कर चीन इस शान्ति महासभा में आया था, पर यहां जिस व्यवस्था का होना निश्चित हुआ है, उसे देख कर चीन को घोर निराशा होगी और वह समझेगा कि हम अब तक बड़े भारी भ्रम में पड़े हुए थे। यदि फ्यूम के प्रश्न के सम्बन्ध में कौंसिल अपनी दृढ़ता दिखला सकती थी, तो उसे शान्तुंग के सम्बन्ध में भी तो चीन का दावा मानने के लिए और भी अधिक दृढ़ता दिखलानी चाहिये थी; क्योंकि इसका सम्बन्ध तीन करोड़ साठ लाख मनुष्यों के भावी कल्याण से है और इसी पर पूर्वी एशिया की शान्ति निर्भर करती है। ....

"१८९७ में जर्मनी ने घोर अन्याय और बलप्रयोग करके शान्तुंग में अधिकार प्राप्त किये थे और अब तक चीनी लोग उसका बराबर विरोध करते आये हैं। आज वे अधिकार जर्मनी से छीन कर जापान को देना मानो उस अन्याय व अत्याचार को और भी पुष्ट तथा स्थायी बनाना है।

"इसके अतिरिक्त एक बात और है। चीन ने जर्मनी और आस्ट्रिया के साथ युद्ध की घोषणा की थी, इसलिए चीन और उन शक्तियों में जो सन्धियां तथा समझौते हुए थे, वे सब आप से आप रद्द हो गये और उनके अनुसार जर्मनों को जो अधिकार मिले थे, वे स्वभावतः चीन को वापस मिल गये। चीन ने जर्मनी के साथ युद्ध की जो घोषणा की थी, उसकी सूचना सब शक्तियों को सरकारी तौर पर दे दी गई थी और मित्र राष्ट्रों तथा उनके साथियों ने उसे मान्य भी कर लिया था। ....कौंसिल ने जापान को जो अधिकार दिये हैं, वे जर्मनी से छीन कर नहीं, बल्कि चीन से छीन कर दिये हैं — अपने शत्रु से छीन कर नहीं अपने मित्र और साथी से छीन कर दिये गये हैं। एक तो यों ही शान्तुंग में जर्मनी के स्थान पर जापान का आ पहुंचना बहुत भयंकर है, दूसरे जब हम यह देखते हैं कि जापान पहले से ही दक्षिण मंचूरिया और पूर्वी भीतरी मंगोलिया में जमा हुआ है, उस समय उसकी भयंकरता और भी बढ़ जाती है। पेकिंग के पास पड़ने वाली पेचिली की खाड़ी के दोनों ओर उस का अधिकार है और पेकिंग जाने वाली तीन सड़कें भी उसके हाथ में है, इसलिए हमारी राजधानी मानो सभी ओर से जापानी सेनाओं से घिर गई है। इसके अतिरिक्त चीन के लिए शान्तुंग एक पवित्र तीर्थ से कम नहीं है, क्योंकि चीन के कनफूशस और मेन्शी आदि ऋषि वहीं हुए हैं और चीनी सभ्यता का विकास भी सब से पहले वहीं हुआ है।

"चीन के प्रतिनिधियों का यह ख्याल है कि कौंसिल ने यह निर्णय केवल इसी लिए किया है कि फरवरी और मार्च १६१७ में ग्रेट ब्रिटेन तथा फ्रांस ने जापान से इस बात का वायदा किया था कि शान्ति महासभा में हम शान्तुंग के सम्बन्ध में तुम्हारा समर्थन करेंगे और वहां जर्मनी को जो अधिकार प्राप्त हैं, वह तुम को दिलवा दिये जायेंगे, पर इन गुप्त समझौतों में चीन कभी सम्मिलित नहीं हुआ था। जब चीन को जर्मनी आदि के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करने के लिए निमन्त्रित किया गया था, तब भी उसे यह नहीं बतलाया गया था कि मित्र राष्ट्रों में परस्पर क्या समझौता हुआ है। इससे सिद्ध होता है कि सब लोगों ने मिल कर पहले ही यह तय कर लिया था कि जब चीन आकर हम लोगों का सहायक और साथी बन जायगा, तब हम लोग अमुक प्रकार से उसके भाग्य का निपटारा कर डालेंगे।"

चीनी प्रतिनिधि सन्धिपत्र पर बिना हस्ताक्षर किये वर्सेलीज से लौट आये, लेकिन यह चर्चा यहीं खतम नहीं हुई, यह वाशिंगटन कान्फ्रेन्स तक चलती रही।

शान्तुङ्ग की वापसी

शान्ति महासभा के चीन की न्यायसम्मत मांग को ठुकरा देने से चीन में विदेशियों के विरुद्ध एक जबर्दस्त असन्तोष पैदा हो गया। चीन के प्लेटफार्म और अखबारों द्वारा खुल्लम खुल्ला ब्रिटेन, जापान और फ्राँस का विरोध होने लगा। 'अमेरिका के

विरुद्ध भी चीन में तीव्र आन्दोलन शुरू हुआ, क्योंकि उसी के जोर और आश्वासन देने पर वह युद्ध में सम्मिलित हुआ था। अमेरिका पर वस्तुतः इस की नैतिक जिम्मेवारी भी कम न थी। प्रेजिडेण्ट विल्सन के १४ सिद्धान्तों की उन्हीं के सामने मिट्टी पलीद हुई थी। उनकी जगहंसाई खूब हो रही थी। इसलिये चीन के मामले में उसके लिए कोई कदम बढ़ाना जरूरी था। फिर एक और भी बात थी। शान्ति महासभा के निर्णयों से जापान का बल प्रशान्त महासागर में बहुत बढ़ गया था। अमेरिका को यह खतरा था कि जापान चीन में अपना प्रभाव अधिक फैला कर कहीं चीन पर अधिकार ही न कर ले। अमेरिका के व्यापार, व्यवसाय को तो धक्का लगने का हमेशा ही खतरा था। इसलिए यह स्वाभाविक था कि जापान के बढ़ते हुये प्रभाव को रोकने के लिए वह चिन्तित हो। उसने १९२१-२२ में नौ राष्ट्रों की एक कांफ्रेंस बुलाई। यह कान्फ्रेंस वाशिंगटन में हुई थी, इसलिए यह वाशिंगटन कांफ्रेंस के नाम से प्रसिद्ध है। सं० राष्ट्र अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, इटली, और जापान के सिवा चीन, बेल्जियम, हालैंड और पुर्तगाल भी इसमें निमन्त्रित किये गये।

चीन ने वाशिंगटन में उपस्थित राष्ट्रों के सामने अपनी मांगें पेश कीं। चीन में विदेशियों के विशेषाधिकार, जापान की १९१५ की संधि, चीन में अन्य राष्ट्रों के टैक्स लेने के स्थान, मंचूरिया में जापानी गार्डों के होने की चीन निन्दा की और इन के हटाने की मांग पेश की। इस बार अमेरिका ने भी चीन का

जोरों से समर्थन किया। इंग्लैंड का रुख भी चीन के लिए विशेष प्रतिकूल नहीं था। इन नौ राष्ट्रों में जो संधि हुई, उसकी पहली धारा इन शब्दों के साथ शुरू हुई थी:—

"To respect the sovereignty, the independance and the teritorial and administrative integrity of China..........." अर्थात् "चीन के प्रभुत्व, स्वतन्त्रता और प्रादेशिक एवं शासनसम्बन्धी अखगडता या एकता के सम्मान के लिए..........."

१६ नवम्बर को कांफ्रेंस ने चीन जापान के विषय में निम्न-लिखित प्रस्ताव पास किये:—

१—चीन की स्वतन्त्रता, आधिपत्य तथा राज्य की सीमा पूर्ववत् रहे और सब इसे स्वीकार करें।

२—कोई देश चीन की उन्नति के मार्ग में बाधक न हो।

३—चीन में व्यापार करने की सब को समान सुविधायें प्राप्त हों।

४—कोई राष्ट्र चीन की अशान्तिमय परिस्थिति से लाभ न उठावे।

मुक्तद्वार व्यापार की नीति के सम्बन्ध में भी कुछ प्रस्ताव पास हुये। चीन को चुंगी के कर लगाने के विषय में भी स्वतन्त्रता दी गई। एक पृथक सन्धि द्वारा शान्तुंग के प्रश्न पर विचार हुआ और क्याओ चाओ चीन को वापस मिल गया, परन्तु वहां के स्कूल, धार्मिक स्थान तथा कबरिस्तान जापानियों के ही अधि-

कार में रहे। कांफ्रेंस में वेई हाई वेइ, हांगकांग, पोर्ट आर्थर और क्वांग चाउ भी चीन को लौटा देने की बात हुई, लेकिन इनमें से एक भी नहीं लौटाया गया।

१९वीं और २०वीं सदी में शायद यह पहली सन्धि थी, जिस में चीन से कुछ और छीना नहीं गया और सब ने अपेक्षाकृत अधिक सहानुभूति से चीन की समस्याओं पर विचार किया। इसका कारण यह था कि रूस तो सोवियट क्रांति के बाद से चीन में सब विशेषाधिकार छोड़ ही चुका था। जर्मनी के कोई अधिकार चीन में रहे ही न थे। फ्रांस भी यूरोपियन लड़ाई के बाद पूर्व में कुछ कम दिलचस्पी लेने लगा था। ब्रिटेन और अमेरिका भी जापान के बढ़ते हुए प्रभाव से ईर्ष्या करने लगे थे। इसलिए जापान को दबाया गया। जापान के राजदूत बैरन शिडेहारा ने चीन को आश्वासन दिया कि—"जापान एक इंच भी चीन का राज्य नहीं चाहता।" जापान ने इस आश्वासन का कहां तक और कैसे पालन किया, यह हम आगामी अध्यायों में देखेंगे।

नवाँ अध्याय

चीन के अंगभंग की तैयारी

वाशिंगटन कान्फ्रेन्स में जापानी प्रतिनिधि बैरन शिडेहारा ने चीन को आश्वासन दिया था कि जापान उसकी एक इंच भर भी जमीन नहीं लेना चाहता। लेकिन इसके बाद का इतिहास और विशेष कर पिछले ६-७ वर्षों का इतिहास पढ़ कर हम बिलकुल विपरीत परिणाम पर पहुंचते हैं। १९३६ ई० तक मंचूको, जेहोल, अन्दरूनी मंगोलिया तथा उत्तरी चीन के कुछ प्रान्तों पर सैनिक शासन के द्वारा कब्जा करके जापान ने चीन के इतने बड़े भाग पर अधिकार कर लिया है कि इसका कुल क्षेत्रफल ब्रिटेन, फ्रान्स, जर्मनी, इटली व स्पेन के सम्मिलित क्षेत्रफल के बराबर है और

इसकी जनसंख्या दस करोड़ है। इतने से भी वह सन्तुष्ट नहीं है और जुलाई १९३७ में उसने नया युद्ध छेड़ दिया है, जिसका अन्त अभी तक भी नहीं हुआ। यह सब करते हुए भी जापानी अधिकारी मि० शिडेहारा के उक्त आश्वासन को दुहरा रहे हैं। चीन-जापान के इतिहास में ही नहीं, संसार के साम्राज्यवाद के इतिहास में भी यह घटना अत्यन्त अद्भुत और विचित्र रहस्यपूर्ण है। इसे समझने के लिए पिछले १५ सालों पर एक नजर डालनी होगी।

जापान के आर्थिक हित

हम पिछले अध्याय में कह आये हैं कि वाशिंगटन कान्फ्रेन्स के परिणामस्वरूप जापान को चीन में आगे न बढ़ने और पिछली कुछ रियायतें छोड़ने पर विवश होना पड़ा था। उसने कहने को तो यह कह दिया, लेकिन उसकी खूनी दाढ़ों में चीनी शिकार का जो चस्का लग चुका था, उसे वह यों ही क्यों छोड़ देता? साम्राज्यवाद में यद्यपि वह नया खिलाड़ी था, तथापि अपने गुरुओं को पछाड़ने लगा था। उसकी चीन पर नजर लग चुकी थी और गत महासमर में चीन की रंगस्थली से अन्य प्रतिस्पर्धी शक्तियों के हट जाने के कारण उसके लिए शिकार को पाना बहुत आसान हो गया था। फिर जापान की बढ़ती हुई जनसंख्या तथा बढ़ते हुये उद्योग धन्धों की खपत के लिए नये बाजार अनिवार्य थे। बिलकुल बगल में इतने बड़े बाजार को खाली देख कर

प्रलोभन का रोकना कठिन था, परन्तु एकदम चीन पर कब्जा कर लेना भी बहुत सहल न था। वाशिंगटन कान्फ्रेन्स में अमेरिका ने जापान की इस नीति का तीव्र विरोध किया था और आगे भी उसे अमेरिकन विरोध का सामना करना पड़ता। इसलिए कुछ सालों तक उसने चीन पर प्रत्यक्ष आक्रमण की नीति छोड़ कर दूसरी नीति स्वीकार की। चीन के आन्तरिक गृहयुद्धों का लाभ उठा कर उसने कभी एक तुखन को और कभी दूसरे तुखन को सहायता देनी शुरू की। यह सहायता देकर वह उस तुखन के प्रान्त में काफी सुविधायें प्राप्त कर लेता। इसका दूसरा परिणाम यह हुआ कि गृहयुद्ध जारी रहने से चीन प्रतिदिन कमजोर होता गया। बरसों तक उसकी यही नीति रही। चीन की राजनैतिक और सैनिक व्यवस्था में ही नहीं, आर्थिक व्यवस्था में भी वह खूब दिलचस्पी लेता रहा। उसने चीन में रुपया पानी की तरह बहाया। १९२७ ई० तक जापान सरकार द्वारा गारण्टी किया गया व्यक्तिगत कर्ज, जिसे 'नीशिहारा कर्ज' कहते हैं, १२,००,००,००० डालर चीन को दिया जा चुका था। इसके अलावा सरकार द्वारा अरक्षित कर्ज भी २,१५,००,००० डालर था। रेलवे तथा अन्य कुछ गारण्टी किया कर्ज ६,८०,००,००० डालर था। इस सरकारी लेन देन के अलावा जापान के पास चीन का सब से बड़ा लोहे का कारखाना हन-ये-पिंग भी गिरवी रखा हुआ था। चीन के जहाजों व बैंकों में भी जापान का १०,००,००,००० डालर लगा हुआ था। इस तरह चीन में

१९२७ तक जापान की कुल पूंजी ३१ करोड़ डालर लगी हुई थी। इससे चीन की आर्थिक व्यवस्था पर जापान का बहुत अधिक प्रभुत्व हो गया था। १९२५ ई० में चीन ने अन्य देशों के साथ साथ जापान से भी अन्तर्देशिकता (Etxra territoriality) की रियायत छोड़ने की प्रार्थना की, लेकिन जापान ने साफ इन्कार कर दिया।

चीन में इन दिनों राष्ट्रीय जागृति व एकता का भाव कैसे बढ़ रहा था, यह हम छठे अध्याय में देख चुके हैं। चांग काई शेक के नेतृत्व में चीन एक हो रहा था। इस राष्ट्रीय एकता के साथ साथ चीन में आर्थिक और राजनैतिक स्वतन्त्रता का भाव भी जोरों से बढ़ रहा था। चीन की सारी आर्थिक मशीनरी पर विदेशियों का प्रभुत्व देखकर चीन में विदेशियों के विरुद्ध आंदोलन का पैदा होना भी स्वाभाविक था। एक ओर यह आन्दोलन विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार के रूप में बढ़ने लगा और दूसरी ओर विदेशियों का आर्थिक मशीनरी पर से कब्जा कम करने के आन्दोलन के रूप में। ब्रिटेन के साथ शांघाई में इसी तरह की एक छेड़छाड़ १९२५ में हो चुकी थी। उसने विवश होकर चीन की दक्षिणी सरकार को स्वीकृत कर लिया था। अब चीन के राजनीतिज्ञों का ध्यान जापान की ओर गया। जापान ने यों तो समस्त चीन पर नजर लगाई हुई थी, लेकिन मंचूरिया पर उस की नजर बहुत अधिक समय से थी। अत्यन्त संक्षेप से इसका इतिहास यहां दिया जाता है।

मंचूरिया पर दृष्टि

मंचूरिया चीन के पूर्वोत्तर में एक विशाल प्रान्त है, जो उन दिनों चीन का ही एक प्रान्त था। मंचूरिया के उत्तर पूर्व में साइबेरिया और पश्चिम में मंगोलिया व साइबेरिया हैं। इस भौगोलिक स्थिति के कारण बहुत पहले से ही रूस व जापान की इस प्रान्त पर नजर थी, क्योंकि इस पर जिस का अधिकार होता, वह दूसरे को दबा सकता था। बहुत समय से रूस व जापान चीन सरकार से इस प्रान्त में खास खास रिआयतें पाने की होड़ कर रहे थे। दोनों सरकारें मंचूरिया पर आर्थिक व सैनिक अधिकार पाने के लिए चीन से या परस्पर षड्यन्त्र करती रहीं। जापान और रूस में पहले जो बड़ा भारी युद्ध हुआ था, उसका भी प्रधान कारण मंचूरिया था और उस युद्ध का अन्त भी मंचूरिया को बांट कर हुआ था। दक्षिणी मंचूरिया-स्थित रेलवे भी जापान ने ले ली थी। मंचूरिया के अनेक शहरों व बन्दरगाहों पर भी जापान का आर्थिक अधिकार हो चुका था। चीन को विवश करके उसने बहुत सी और भी रियायतें प्राप्त कर ली थीं। सन् १९१० में उसने फूशन और येन टाई की कोयले की खानें हथिया ली थीं। ओकुरा एण्ड कम्पनी को पेनसी की खानों का ठेका मिल चुका था। गत महायुद्ध के समय अन्य राष्ट्रों के आपसी युद्ध में लग जाने के कारण जापान ने जो २१ शर्तें चीन के सामने पेश की थीं, उनमें से भी अधिकांश शर्तें मंचूरिया को ही दृष्टि में रखकर पेश की

गई थीं और इनके अनुसार मंचूरिया रेलवे तथा खानों का पट्टा २५ साल की बजाय ६६ साल के लिए ले लिया गया। रूस भी अपनी महान् क्रान्ति के बाद से चीन के आन्तरिक मामलों में कम दिलचस्पी लेने लगा था, इससे जापान का प्रभाव मंचूरिया में अधिकाधिक बढ़ने लगा। चीन के आपसी गृहयुद्ध के वर्षों में भी जापान ने मंचूरिया के तुख़न चांग सो लिन को खूब सहायता देकर अपना अभीष्ट-साधन शुरू कर दिया। चीन में लगी हुई जिस पूंजी का हमने ऊपर निर्देश किया है, उसका बड़ा भाग मंचूरिया में ही लगा हुआ था। वस्तुतः मंचूरिया एक प्रकार से जापान का आर्थिक उपनिवेश बन गया था। इन्हीं दिनों में चीनी लोग मंचूरिया में धड़ाधड़ जाकर बसने लगे और चीन सरकार भी मंचूरिया की ओर विशेष ध्यान देने लगी। १९२३ से १९२९ तक सात वर्ष के भीतर २५ लाख चीनी बड़ी दीवार पार कर मंचूरिया में आकर बस गये। पिछली जनसंख्या के अनुसार मंचूरिया की आबादी तीन करोड़ थी। इसमें ९५ फी सदी चीनी हैं और बाकी ५ फी सदी रूसी, मंगोली खानाबदोश, कोरियन और जापानी हैं। पुराने मंचू लोग चीनियों में मिल गये हैं और अपनी भाषा तक भूल बैठे हैं। चीनियों के इतनी बड़ी संख्या में मंचूरिया आकर बसने से जापान को यह भय हुआ कि जापानियों की प्रगति में वहां काफी बाधा पड़ जायगी। जापान यह नहीं चाहता था कि चीनी इस तरह आकर मंचूरिया में अपना प्रभुत्व और दृढ़ कर लें। पर वह चीनियों को रोक तो

नहीं सकता था। मंचूरिया चीन का ही प्रान्त था, चीन सरकार अपने किसी भी प्रान्त को बसाने में स्वतन्त्र थी। तब जापानियों ने वहां एक शरारत शुरू की। मंचूरिया में कोरियानिवासी भी काफी संख्या में आकर बस रहे थे। जापानी अधिकारियों के उकसाने से कोरियनों ने चीनियों से लड़ाई झगड़े शुरु कर दिये। कोरियनों ने दो मांगे पेश कीं। एक तो यह कि उन्हें भी मंचूरिया में ज़मीन खरीदने और बसने की स्वतन्त्रता हो और दूसरी यह कि जापानी साम्राज्य की प्रजा होने के कारण उन पर चीनी अदालतें मुकदमा न चला सकें। चीनी अधिकारियों ने इन मांगों को मानने से इनकार कर दिया। फलतः कोरियनों और चीनियों के झगड़े बढ़ने लगे। कोरियनों ने इसका बदला कोरियानिवासी चीनियों से लिया। वहां बहुत से चीनी मार दिये गये। चीन सरकार का कहना था कि जापान सरकार ने कोरिया में चीनियों को बचाने की कोई कोशिश नहीं की। इस लिए जापान के विरुद्ध चीन में जो आन्दोलन चल रहा था, वह और भी जोरों से बढ़ने लगा। चीन-जापान-संघर्ष का एक और भी कारण कुछ समय पहले पैदा हो गया था। कुछ साल पहले मंचूरिया में एक विद्रोह को दबाने के लिए चीन ने मंचूरियन रेलवे द्वारा सेना भेजनी चाही थी, तब जापान ने चीन के मार्ग में बहुत सी बाधायें डाली थीं। इससे असन्तुष्ट होकर चीन ने १९२५-२६ से उस रेलवे के ठीक मुकाबले में ४०० मील लम्बी रेल-लाइन बनानी शुरू की थी। वह लाइन अब पूरी हो चुकी

थी। इससे जापान की रेलवे लाइन को नुकसान पहुंच रहा था और जापानियों व चीनियों के सम्बन्ध ज्यादा खराब होने लगे। १६१५ की २१ शर्तों के पालन के सिलसिले में भी दोनों सरकारों में बहुत खटपट होने लगी थी।

चीन और जापान के पारस्परिक द्वेष की खाई बराबर चौड़ी हो रही थी। इन्हीं दिनों में इस विद्वेष को भड़काने वाली एक एक और घटना भी हो गई। जुलाई १६३१ में जापानी कप्तान नाकामुरु मंचूरिया में गुप्त रूप से सन्देहपूर्ण यात्रा करते हुए पाये गये। चीनी अधिकारियों ने उन्हें गिरफ्तार करके प्राणदण्ड की सजा दे दी।

जापानी माल का बहिष्कार

समस्त चीन में विदेशियों के विरुद्ध जो आन्दोलन चल रहा था, वह मंचूरिया में इन घटनाओं के कारण जापानी माल के बहिष्कार के रूप में घनीभूत हो गया। मंचूरिया की राजधानी मुकदन में बहिष्कार-सङ्घ की स्थापना की गई, जिस की शाखाएं समस्त मंचूरिया में बड़ी तेजी से फैल गईं। फोरन अफेयर्स असोसियेशन, नार्थ ईस्टर्न कल्चरल असोसियेशन आदि अनेक संस्थाएं भी बहिष्कार आन्दोलन में सहायता देने लगीं। जापानी कम्पनियों, जापानी जहाजों और जापानी रेलवे का बहिष्कार करने की आवाज सारे मंचूरिया में गूंज उठी। जापानियों के साथ सम्बन्ध रखने वाले चीनियों का भी सामाजिक बहिष्कार

होने लगा। जापान ने चीन के साथ जो दुर्व्यवहार किये थे, किताबों, पत्रों और सभाओं में उन पर खूब प्रकाश डाला जाने लगा। जापान का हरा भरा रोजगार मुरझा गया। उसे करोड़ों रुपये का नुकसान हो गया। जापान की जनता भी इससे क्षुब्ध हो उठी। जापानी सरकार के पास भी इस आन्दोलन को दबाने का कोई उपाय न था। चीन का यह सब आन्दोलन उचित था, क्योंकि जापान किसी तरह विशेषाधिकारों को न छोड़ता था और न चीन के आन्तरिक मामलों में तटस्थ रहना स्वीकार करता था। निर्बल चीन लड़ नहीं सकता था। निर्बल का हथियार बहिष्कार है, यही उसका बल है और यही उसका अधिकार है। जापान के पास इसका कोई जवाब न था। उसने पशुबल का आश्रय लेने का निश्चय कर लिया और इसके लिए वह किसी मौके की तलाश करने लगा। जब युद्ध करने का निश्चय कर लिया हो, तब कारण मिलते देर नहीं लगती। जापान को भी शीघ्र बहाना मिल गया या यों कहिये कि उसने बहाना बना लिया। यह कहना नहीं होगा कि आक्रमण से पहले जापान के और संसार के लोकमत को अपने अनुकूल बनाने के लिए जापानी अधिकारियों की ओर से खूब प्रचार किया गया कि मंचूरिया में अशान्ति और अव्यवस्था का राज्य है, डाकू लोग जापानियों को नाहक छेड़ते हैं, रेलवे रक्षक जापानी सेना के होते हुए भी रेलवे पर डाकुओं के हमले बराबर बढ़ते जाते हैं। जापानी पत्रों में प्रकाशित एक सूची के अनुसार १९०७ में ३२, १९१० में ३४,

१९१४ में ६४, १९१८ में ८२, १९२२ में १०४, १९२६ में २१३, १९२८ में २९६, १९२८ में ३५२, और १९२९ में ३९८ हमले हुए। तरह तरह के झूठे सच्चे समाचारों से जापान की जनता में युद्ध का नशा पैदा किया जाने लगा। इसका फल भी आशानुकूल हुआ। जापानी जनता की ओर से भी मंचूरिया पर आक्रमण करने की सलाह दी जाने लगी। अपने देश में सैनिक नीति का पोषण प्राप्त करने के बाद ही जापान को मौका भी मिल गया।

दसवाँ अध्याय

मंचूको राज्य की स्थापना

१८ सितम्बर १९३१ की रात को मुकदन के पास चीन की एक सेना में और जापान के रेलगार्डों में संघर्ष हो गया। जापानी सेना ने इसकी शिकायत मुकदन के सैनिक अधिकारियों या चीन सरकार से न करके स्वयं उन्हें दण्ड देने का निश्चय कर लिया। एक जापानी सेनापति कर्नल शिमामोतो, जो इस कार्रवाई के लिये ज़िम्मेवार था, लिखता है:—"रेलवे लाइन के पास धड़ाका हुआ। देखने पर मालूम हुआ कि रेल के कुछ खाली डब्बे बारूद से उड़ाये गये हैं। जापानी सैनिकों ने इनका पीछा किया और कई चीनियों को मार डाला। कुछ जापानी भी मारे गये। इस पर

एकदम जापानी सेना बुलाई गई। सवेरे तक लड़ाई होती रही। सवेरे ३०० चीनी लाशें मैदान में पाई गईं और ३०० ने आत्म-समर्पण कर दिया। बाकी पास की बैरकों में भाग गये, ११-३० सवेरे उन पर भी जापानी सेनाओं ने आक्रमण कर लिया।" मामला यहीं खतम हो जाता, लेकिन जापानी तो सिर्फ यह मामला सुलझाना न चाहते थे, वे तो चीन और विशेषकर मंचूरिया की समस्या को अन्तिम रूप से हल करने का निश्चय कर चुके थे।। अब यह मौका कैसे छोड़ते ? कर्नल शिमामोतो के ही शब्दों में "चीनी आक्रमण न कर सकें, इस खयाल से जापानियों ने चीन के हवाई अड्डे, ६० हवाई जहाजों तथा बारूदखाने पर कब्जा कर लिया। .... इन पर सामरिक दृष्टि से कब्जा करना आवश्यक था। "फैंग हुआन चेंग, सिनमिन तुंग, तेह लिंग, चंग चुन, किरिन, चेंगतिया तुंग, तुंग लियाओ, कुशुन और हाइचेंग आदि नगरों पर भी अधिकार करके चीनी सेनाओं को वहां से निकालदिया गया। ...... कुछ ही दिनों में २ लाख चीनी सेना भाग गई।"

इस वर्णन से स्पष्ट है कि चीनी सेना युद्ध के लिये तैयार न थी। जापानियों ने युद्ध की योजना पहले से ही बना रक्खी थी, अन्यथा यह असम्भव था कि दो चार दिनों में जापानी सेना समस्त मंचूरिया पर अधिकार कर लेती। मजे की बात यह है कि जापान ने युद्ध की घोषणा नहीं की। बगैर घोषणा किये ही सारे मंचूरिया पर उसने अधिकार कर लिया। यदि जापान को कोई

ऐसी शिकायत थी भी कि चीन सरकार उसे दूर नहीं करती थी, तो राष्ट्रसंघ के नियमानुसार उसे वहां अपना मामला भेजना था, क्योंकि दोनों उसके सदस्य थे।

पूर्वनिश्चित योजना

वस्तुतः यह आक्रमण बहुत सोच विचार के बाद किया गया था। बैरन शिडेहारा के बाद मिनामी जापान के परराष्ट्र मन्त्री बने। ये सैनिकवाद के समर्थक थे। १५ सितम्बर को इन्होंने सैनिक नेताओं से मिल कर मंचूरिया में बलप्रयोग की नीति को स्वीकार करने का निश्चय कर लिया था। इन्हीं नेताओं के साथ कर्नल डोइहारा भी मौजूद थे, जो चीन में जापानी सैनिक हलचलों और षड्यन्त्रों के लिए 'जापान का लारेंस' के नाम से प्रसिद्ध हो चुके थे। इस समय मंचूरियासम्बन्धी नीति का निर्णय करने के लिए वे खास तौर पर मुकदन से जापान बुलाये गये थे। जापान के परराष्ट्रसचिव और सैनिक अधिकारियों से विचारविनिमय करने के बाद वे निश्चित सूचनाएं प्राप्त कर उसी दिन मुकदन की ओर रवाना हो गये। उनकी रवानगी के तीन दिन और पहुंचने के एक दो दिन बाद ही उक्त काण्ड का समाचार संसार ने सुना।

यह समय चीन पर आक्रमण के लिये विशेष उपयुक्त था। मंचूरिया के प्रान्तीय शासक चांग सुइ लियंग के पास यद्यपि दो लाख की सेना थी, तथापि वह जनरल येन सि शान और शि

युनान के विद्रोह के दमन के लिए अपनी विशाल सेना के साथ पीपिंग की ओर गया हुआ था। वहां जाकर वह बीमार भी पड़ गया था। इधर मंचूरिया में बहुत थोड़ी सेना थी और जो थी भी, वह किसी प्रभावशाली सेनापति के हाथ में न थी। नानकिंग की सेना भी कम्यूनिस्टों का दमन करने के लिए दक्षिणी प्रान्तों में गई हुई थी, इसलिए वह भी जापानियों का मुकाबला करने नहीं आ सकती थी। इस से अच्छा स्वर्णीय अवसर जापान को क्या मिलता ? रेलवे के पास बमधड़ाका चीनियों ने किया या जापानियों ने, यह अभी तक भी सन्दिग्ध है। अस्तु।

चीन की सरकार ने मंचूरिया पर आक्रमण का तीव्र विरोध किया और राष्ट्रसङ्घ को इस मामले में हस्ताक्षेप करने के लिए लिखा। राष्ट्रसङ्घ ने इस मामले में जो रवैया अख्तियार किया, उसने उसकी ऐसी पोल खोली, जैसी कि अब तक कभी न खुली थी। सङ्घ से कुछ करते धरते न बना। इधर जापान मंचूरिया पर कब्जा कर रहा था, उधर राष्ट्रसङ्घ की बैठक में कार्यक्रम कैसे पेश हो, पहले क्या पेश हो और पीछे क्या, इसमें वक्त गुजारा जा रहा था। दो ढाई मास बाद यह प्रस्ताव पास किया गया कि लार्ड लिटन की अध्यक्षता में एक कमीशन मंचूरिया जाकर सारे मामले की जांच करे और शीघ्र ही अपनी रिपोर्ट सङ्घ के सामने पेश करे। जापान ने इस कमीशन के साथ सहयोग करने से इन्कार कर दिया। कमीशन चीन पहुंचने भी न पाया था कि चीन के एक दूसरे भाग में जापान की तोपें गरजने लगीं।

बहिष्कार जोरों पर

चीन में जापान-बहिष्कार का जो आन्दोलन चल रहा था, वह मंचूरिया-आक्रमण से और भी अधिक प्रचण्ड हो गया। जापानी वस्तुओं का बहिष्कार चरम सीमा तक पहुंच गया। शांघाई के नवयुवकों और छात्रों ने इसमें विशेष रूप से भाग लिया। वस्तुतः बहिष्कार-आन्दोलन केवल जापान के लिए न था। यह तो उन सब विदेशों के विरुद्ध था, जो चीन से अन्यायपूर्वक विशेषाधिकार लिये बैठे थे, पर फिर भी अब इस आंदोलन को जापान की ओर ही केन्द्रित कर दिया गया था। जापान-बहिष्कार संस्थाओं की राष्ट्रीय कान्फ्रेंस ने, जो नानकिंग में हुई थी, निम्नलिखित आशय की घोषणा प्रकाशित की थी:—

"हमारे जापानविरोधी आन्दोलन का उद्देश्य है चीन पर जापान के आर्थिक प्रभुत्व को नष्ट करना। इसके बाद हमारा अगला कदम शेष साम्राज्यवादी राष्ट्रों की ओर उठेगा और उन अपमानजनक सन्धियों और रियायतों का अन्त करेगा, जो चीन की विवशता से उन्होंने प्राप्त कर ली हैं। हमारा उद्देश्य चीन को अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में अन्य राष्ट्रों के समान स्थान दिलाना और उसकी व्यावसायिक व आर्थिक उन्नति है। हम (डा० सनयात सेन के) तीन सिद्धान्तों के आधार पर देश की आर्थिक उन्नति चाहते हैं। यही हमारा उद्देश्य है। हमारे सङ्घ का नाम भी बदल कर 'असमान सन्धि-निवारक राष्ट्रीय सङ्घ' हो गया है……।"

इससे स्पष्ट है कि यह आन्दोलन विशुद्ध राष्ट्रीय था। जापान

क्योंकि अब भी लगातार चीन के साथ ज्यादतियां कर रहा था, इसलिए जापान-बहिष्कार के नाम पर चीनी जनता को जागृत करना अधिक आसान था। यह आन्दोलन गैरसरकारी था, लेकिन सरकार की सहानुभूति उसे अवश्य प्राप्त थी। वह बार-बार उस आन्दोलन के नेताओं को यह चेतावनी देती रहती थी कि जोर-जुल्म का आश्रय मत लो। भिन्न-भिन्न शहरों की म्युनिसिपल संस्थाओं में लोकमत के प्रबल होने के कारण इस आंदोलन को उनसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहायता अवश्य मिलती थी। शांघाई में इस आन्दोलन को सरकारी अफसरों व कारपोरेशन से भी सहायता प्राप्त थी, फिर भी यह आन्दोलन प्रधानतः गैरसरकारी ही था। भारत में म० गांधी ने १९२०-१९२१ में विदेशी कपड़ों की होली की आज्ञा दी थी। चीन के नेताओं ने भी इसका अनुकरण किया। २० जुलाई १९३१ को जापानी वस्तुओं के जलाने तथा रिश्वत लेकर इस आंदोलन में रुकावट डालने वालों को दण्ड देने का निश्चय किया गया। लुकेछिपे जापानी माल बेचने या खरीदने वालों के माथे पर 'माइ कुओ चि' (देशद्रोही) अंकित करने या अन्य दण्ड देने की भी आज्ञा दी गई। हर एक देश में राष्ट्रीय आंदोलन के कार्यकर्ताओं को अनुशासन-भंग के लिए कुछ न कुछ दण्ड देने का निश्चय करना ही पड़ता है। इस लिये यह निश्चय भी अस्वाभाविक न था।

शांघाई में हत्याकाण्ड

१८ जनवरी १९३२ को एक दुर्घटना हो गई। चापेइ (शांघाई)

में एक चीनी कारखाने के सामने कुछ चीनियों व जापानियों की मुठभेड़ हो गई। इसमें एक जापानी घायल हुआ और एक मर गया। बात बिलकुल मामूली थी। हर एक देश में रोज ही मार-पीट की सैकड़ों घटनायें होती हैं। इन्हीं के लिए तो पुलिस रखी जाती हैं, लेकिन जापानी अधिकारी इस का निर्णय थोड़े ही कराना चाहते थे, वे तो लड़ाई का बहाना ढूंढ रहे थे। जापानियों ने दूसरे दिन ही चीनियों के कारखाने में आग लगा कर बदला ले भी लिया था, पर इससे उनका आन्तरिक उद्देश्य तो पूरा न होता था। २० जनवरी को जापान के कौंसल जनरल ने शांघाई के मेयर के सामने तीन मांगे पेश कीं:—

(१) मेयर क्षमा प्रार्थना करे, (२) १८ जनवरी के अपराधियों को दण्ड मिले और (३) जापानविरोधी आन्दोलनों का अन्त कर दिया जाय। इन मांगों के साथ ही सेना के प्रदर्शन द्वारा धमकी भी दी गई।

मेयर ने चीनी नेताओं को स्थिति की गम्भीरता बताते हुए बहिष्कार-आन्दोलन बन्द करने की सलाह दी और बहिष्कार संस्था के कुछ दफ्तरों पर अधिकार भी कर लिया। २८ जनवरी को मेयर ने और कोई उपाय न देख कर जापान की तीनों शर्तें स्वीकार कर लीं। युद्ध का यह बहाना व्यर्थ जाते देख कर युद्ध के लिए उत्सुक एडमिरल शिरज़ोवा ने मेयर के पास ११ बजे रात को यह सूचना भेजी कि चापेई में स्थित जापानियों की रक्षा के लिए जापानी सेना भेजी जायगी, इसलिए चीनी सेना रेल के

पश्चिम की ओर हटा ली जाय। यह पत्र ११-१५ बजे रात को मेयर को मिला था। वे अपना सब काम छोड़ कर इस पर विचार ही कर रहे थे कि आध घण्टा बीतते ही ११-४५ पर जापानी सेनाओं ने चीनियों की सब से घनी बस्ती पर अग्निवर्षा भी शुरू कर दी। बड़ी क्रूरता से कतले आम किया गया। सारा शहर तहस नहस कर दिया गया। हज़ारों मारे गये और बेशुमार लोग बेघरबार हो गये। उत्तर दिशा का रेलवे स्टेशन और कमर्शल प्रेस नाम का मुद्रणालय, जो दुनिया भर में सब से बड़ा प्रेस समझा जाता था, भस्मसात् कर दिया गया। दस लाख से अधिक पुस्तकों समेत एक पुस्तकालय की शानदार इमारत भी तहस नहस कर दी गई। साम्राज्यवाद खुल कर नाच रहा था। यह स्मरण रखने की बात है कि यह आक्रमण किसी सेना पर नहीं किया गया था। यह तो निरपराध और निहत्थे लोगों पर तोपों व बमों की वर्षा थी। इस वीरतापूर्ण कार्रवाई के लिए उत्तरदायी जापानी जलसेनापति ने पूछे जाने पर बहुत हर्ष के साथ कहा कि "जापान का यह निर्णय दयापूर्ण है कि निःशस्त्र लोगों पर सिर्फ दो ही दिन बम वर्षा की जाय।" शांघाई में लण्डन के 'टाइम्स' के सम्वाददाता तक ने, जो जापान का समर्थक और चीनियों के विदेशी-बहिष्कार आन्दोलन का विरोधी था, इस हत्याकांड को 'कत्लेआम' कहा था।

जापानियों के इस नृशंस व बर्बरतापूर्ण काण्ड के कारण समस्त चीन में क्रोध और आतंक की लहर दौड़ गई। सभी दल

पारस्परिक भेदभाव भूलकर एक होते दीखने लगे। चीन के भीतरी प्रदेश की साम्यवादी सरकार ने भी नानकिंग सरकार को अपनी सेवायें अर्पित कीं। लेकिन पिछले पारस्परिक अविश्वास या अपनी मानसिक दुर्बलता के कारण चांग काई शेक ने इस समय कोई सख्त कदम उठाने से इनकार कर दिया। उसने राष्ट्रसंघ के पास अपनी विरोध-सूचना भेज दी।

१९वें कूच की सेना

परन्तु इन्हीं दिनों एक अत्यन्त विस्मयकारक घटना हुई। नानकिंग सरकार की दुर्बलता का परिचय पाकर देश के उत्साही नवयुवकों में आग लग गई। ऐसे युवकों की एक सेना दक्षिण से चल कर शांघाई के मैदान में आ पहुंची। यह उन्नीसवीं कूच वाली सेना' कहलाती थी। इसमें कैण्टन के लोग ही थे, मगर यह न तो कैण्टन सरकार के ताबे में थी और न नानकिंग के। इस भद्दी सी फौज के पास न बहुत सामान था, न बड़ी तोपें। इसकी वर्दी भी भद्दी सी थी। चीन के कड़ाके के जाड़े से बचने के लिए उसके पास पूरे कपड़े भी न थे। उसमें बहुत से १५-१६ वर्ष के और कुछ सिर्फ बारह बारह वर्ष के लड़के थे। इस सेना ने, जिस के पास न सामान था और न युद्ध शिक्षा थी, बिना सरकार की रत्ती भर भी सहायता के जापानियों से लड़ने का निश्चय किया। १९३२ के जनवरी और फरवरी के दो सप्ताह तक इन्होंने विलक्षणतापूर्वक जापानियों को रोका। इससे उन्हें स्वयं भी विस्मय

हुआ। जापानियों को ही नहीं, बल्कि विदेशी राष्ट्रों और खुद चीनियों को भी कम आश्चर्य न हुआ। उन्नीसवें कूच की सेना ने इतिहास बना दिया और संसार भर में नाम कमा लिया। जापान की सब योजनायें अस्तव्यस्त हो गईं। शांघाई क्षेत्र से जापानी सेना धीरे धीरे हटा ली गई और जापान भेज दी गई।

मंचूको की स्थापना

शांघाई की जीत के उपलक्ष में मन्दिरों में घण्टे बज ही रहे थे कि चीन पर एक भयंकर वज्रपात के समाचार सुनाई देने लगे। मंचूरिया में एक नये राजतन्त्र की घोषणा होगई। १९३१ में मंचूरिया जापान के हाथ में आ गया था, लेकिन जापान को प्रतिक्षण यह डर रहता था कि कभी भी उससे यह प्रदेश फिर छिन जाय या अन्य राष्ट्रों के दबाव में आकर शान्तुंग की भांति चीन को वापस देना पड़ जाय। इसलिए उसने मंचूरिया में अपना प्रभुत्व कायम रखने के उद्देश्यसे नई नीति का आश्रय लिया। मंचूरिया में कुछ एक सरदारों को मिला कर चीन से स्वतन्त्र होने का आँदोलन पैदा किया गया। इस आंदोलन का रूप यह था "मंचूरिया मंचूरियनों के लिए है।" "सीमा के अन्दर शांति रहे, निवासी सकुशल रहें।" "चीन और मंचूरिया पृथक २ रहें।" डा० सनयात सेन आदि के दल ने, जिस के हाथ में अब भी नानकिंग सरकार थी, किस तरह मंचू राजाओं के विरुद्ध विद्रोह किया, उसकी कथाएं खूब विस्तार व अत्युक्ति के साथ जनता में सुनाई जाने लगीं। इस नये

आन्दोलन में रुपया पानी की तरह बहाया गया। जो लोग इसके लिए तैयार नहीं हुए, उन पर दमन-वज्र चला। अक्टूबर १९३१ में जापानियों ने चुपके चुपके मुकदन में सैल्फ़गवर्नमेंट गाइडेन्स नामक संस्थाएं बनाई और विभिन्न नगरों में नाम मात्र के लिये म्युनिसिपल सरकारों की स्थापना की। विभिन्न प्रान्तोंमें भी नाम की कठपुतली सरकारें बनाई गई। १७ फरवरी को मुकदन में जापान द्वारा मनोनीत सात प्रान्तीय गवर्नरों की कांफ्रेंस ने नया शासनविधान बनाया। १९ फरवरी को मंचूरिया की स्वतन्त्रता की घोषणा की गई। इस नये राज्य का नाम 'मंचूको' रखा गया। सिंगकिंग इसकी राजधानी हुई। पहली मार्च को मंचूको का चीन से सम्बन्धविच्छेद घोषित कर दिया गया। चीन के पुराने मंचू राजवंश के युवक को, जिसे १९११में चीन की गद्दी छोड़नी पड़ी थी, इस नये राज्य का राजा बनाया गया। जापान ने मंचूको की स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली और वहां अपना प्रतिनिधि भेज दिया। जापान ने अत्यन्त गर्व से संसार में घोषणा की कि मंचूरिया ने आत्मनिर्णय के सिद्धान्त के अनुसार यह कार्य किया है। सभी यह जानते थे कि यह जापान की कठपुतली सरकार है, सभी प्रमुख पदों पर जापानी रखे गये है और प्रत्येक मंचू मन्त्री के साथ एक जापानी सलाहकार रहता है। नाम को तो यह सलाहकार होता है, लेकिन वस्तुतः समस्त नीति का संचालक यही होता है। आजकल ६०० से ज्यादा जापानी सलाहकार मंचूरिया में छाये हुये हैं, जिन की इच्छा के बिना कोई महत्वपूर्ण नियम

नहीं बन सकता। १०० सदस्यों की एक असेम्बली है, जिस में ५० तो केन्द्रीय सरकार द्वारा मनोनीत होते हैं और ५० प्रांतीय सरकारों द्वारा। इस तरह असेम्बली में वास्तविक जनप्रतिनिधि आ ही नहीं पाते और जापान की इच्छानुसार सब प्रस्ताव पास हो जाते हैं। यही कठपुतली मंचूको सरकार है। मंचूरिया निवासी चीनी इस शासन के विरुद्ध विद्रोह करते रहते हैं और मंचूको सरकार जापानी सैनिकों की सहायता से उसे दबाती रहती है।

यह साम्राज्यवाद का नया तरीका था। मंचूरिया पर जापान सरकार का वास्तविक प्रभुत्व तो था, लेकिन नाम को वह स्वतन्त्र थी। कोई उसकी ओर अङ्गुली उठाता तो उसे स्पष्ट जवाब था कि मंचूरिया की अपनी सरकार है, मंचू लोगों की इच्छानुसार बनी है, हम क्या कर सकते हैं? हालांकि यह सभी जानते थे कि मंचूरिया की आबादी में ६० फी सदी चीनी ही थे। मंचूको सरकार कायम करने के ढोंग में भी रहस्य था। इससे पहले जापान ने चीन के कोरिया प्रदेश को हस्तगत किया था, लेकिन उस पर अधिकार करने व कायम रखने में जापान को सैकड़ों कठिनताओं का सामना करना पड़ा। चीन के तीव्र विरोध और यूरोपियन राष्ट्रों की निन्दा के अलावा कोरिया के स्वातन्त्र्य आंदोलन को दबाने में भी उसे करोड़ों रुपया बरबाद करना पड़ा। व्यापारिक और व्यावसायिक आंकड़ों के खयाल से भी जापान के लिए यह सौदा मुनाफे का सौदा न होकर घाटे का सौदा था।

इसलिए मंचूरिया के सम्बन्ध में जापान ने दूसरी नीति का प्रयोग किया।

यही दिन थे, जब लिटन कमीशन ने निष्पक्ष भाव से मंचूरिया काण्ड की जांच आरम्भ की। उसकी रिपोर्ट ने जापानी नीति का अच्छा भण्डाफोड़ किया। उस रिपोर्ट में जापान पर दो लांछन लगाये गये थे — (१) १८ सितम्बर को जापान ने जो आक्रमण किया, वह आत्मरक्षा का साधन नहीं कहा जा सकता। (२) मंचूरिया में स्वाधीनता की स्थापना जापानी सेना के दबाव के कारण ही सम्भव हो सकी। वस्तुतः मंचूरिया की जनता इसके पक्ष में न थी।

जापान ने राष्ट्रसंघ में लिटन कमीशन की रिपोर्ट का बहुत विरोध किया, लेकिन जब उसने बहुत लम्बे २ बहस मुबाहसे के बाद रिपोर्ट को स्वीकार कर लिया, तब जापान ने राष्ट्रसङ्घ को अंगूठा दिखाते हुए उससे स्तीफा दे दिया। इस समय अन्य राष्ट्रों ने और खास कर ब्रिटेन ने जापान का जो समर्थन किया, उसका वर्णन १९वें अध्याय में करेंगे, लेकिन इससे चीन की आंखें खुल गईं। राष्ट्र-सङ्घ पर उसका रहा सहा भरोसा भी जाता रहा। सारे संसार को भी मालूम हो गया कि राष्ट्रसंघ कितना नपुंसक है और संसार में किसी भी समय युद्ध छिड़ जाय, तो राष्ट्रसङ्घ उसे रोक न सकेगा। राष्ट्रसङ्घ की बात ठुकरा देने पर भी उसने सङ्घ की १४वीं धारा के अनुसार जापान को कोई दण्ड नहीं दिया और न उस का आर्थिक बहिष्कार ही किया। जापान ने संसार को

दांत दिखा कर कहा—'बस इतना ही जोर था तुम्हारा, मेरा क्या कर लिया ?'

जेहोल भी

कोरिया को जापान ने यह सोच कर जीता था कि वह उसके बिलकुल पास है, अपनी रक्षा के लिए उसका अपने अधिकार में होना आवश्यक है। फिर यह कहा जाने लगा कि कोरिया की रक्षा करने के लिए मंचूरिया का किसी जापानविरोधी के हाथ में रहना ठीक नहीं और अब यह चिन्ता लगी कि चीन से मंचूरिया की नई सरकार को खतरा है, इसलिए मंचूरिया और चीन के सीमास्थित जेहोल प्रान्त को भी मंचूरिया के साथ मिला देना चाहिये। राष्ट्रसङ्घ की नपुंसकता जापान ने भलीभांति जान ली थी, इसलिए मंचूरिया पर आक्रमण के समय उसे थोड़ी बहुत जो झिझक भी हुई थी, वह भी अब न थी।

जापान ने चीन सरकार के पास भी इस आशय की अन्तिम सूचना भेजी कि जेहोल में चीनी सेना है, वह तुरन्त वहां से हटा ली जाय, क्योंकि उक्त प्रान्त मंचूको का ही एक अंग है। ऐसा ही एक पत्र मंचूको-सरकार की ओर से भी जेहोल के चीनी शासक के पास भेजा गया था। चीन ने जापान का यह हुक्म मानने से इनकार कर दिया। इस पर जापान ने पहली जनवरी १९३३ ई० को शां हैंकुआन पर आक्रमण कर दिया। जापान व मंचूको की संयुक्त सेनाओं ने उस पर अधिकार कर लिया।

जेहोल प्रान्त का शासक तँग यु लिन अत्यन्त अयोग्य शासक था। वह हारता गया और ४ मार्च को बिना मुकाबिला किये ही वह जेहोल की राजधानी चेंग टह् से भाग निकला। जापानियों ने उस पर अधिकार करके ही शान्ति न ली, वे चीन की बड़ी दीवार के अन्दर भी घुस आये। ३१ मई १९३३ को जापान और चीन में परस्पर टांगकू में सन्धि हो गई। इसके अनुसार बड़ी दीवार से लेकर लुटाई टुंग चांग और येन चिंग तक का स्थान संरक्षित (Demilitarized zone) घोषित कर दिया गया। चीनी सेनाओं को बड़ी दीवार से दक्षिण की ओर चले जाना पड़ा। इस संरक्षित स्थान में शान्ति कायम रखने के लिए चीनी पुलिस नियत कर दी गई। जापान ने जेहोल को भी मंचूरिया (नया नाम मंचूको) का एक प्रान्त बना लिया। सारे संसार ने अत्यन्त स्तब्ध होकर यह समाचार सुना और एक बार जापान तथा राष्ट्र-संघ को कोस कर अपने काम में लग गया।

ग्यारहवाँ अध्याय

आक्रमणनीति का रहस्य

यहीं तक चीन की दुःखकथा समाप्त नहीं हो गई थी। उसकी कहानी लम्बी है, लेकिन आगे बढ़ने से पूर्व एक बार ठहर कर जापान के इस आक्रमण के कारणों पर कुछ विस्तार से विचार कर लेना आवश्यक है।

जापानी राजनीतिज्ञों ने अपनी इस आक्रमण नीति के जो कारण बताये हैं, वे उन्हीं के शब्दों में सुनिये। तत्कालीन युद्ध-सचिव जनरल अराकी ने लिखा था—"जापान एशिया की अत्याचारपीड़ित जातियों का उद्धारक बनना चाहता है।" जापान के प्रतिनिधि मत्सुओका ने एक अमेरिकन पत्रप्रतिनिधि से

कहा था कि "हम लोग शान्ति व ऐक्य स्थापित करने में चीन की सहायता करना चाहते हैं, हम मंचूरिया को उच्च एवं मानव हितकारी आध्यात्मिक सिद्धान्तों की शिक्षा देना चाहते हैं और हमारी इच्छा उनमें वैसे भाव भर देने की है। हमें आशा है कि मंचूरिया सारे एशिया के सामने एक आदर्श उपस्थित करेगा। जापान अमेरिका तथा समस्त पश्चिमी संसार को आध्यात्मिकता सिखा सकता है। मेरा विश्वास है कि जापान में शीघ्र ही एक दिव्य दूत पैदा होगा जो ईसामसीह द्वारा दिये गये शान्ति और अहिंसा के उपदेश की हिन्दू दर्शन शास्त्रों के अनुरूप मीमांसा करेगा।"

जापान के परराष्ट्र सचिव मि० हिरोता ने कहा था कि "जापानी सेना पूर्वीय एशिया में शान्ति स्थापना के लिए प्रयत्न कर रही है।" एक और वक्तव्य में आपने कहा था—"हम चीन में से जापान-विरोधी आन्दोलन को नष्ट करना चाहते हैं। ...... हम चाहते हैं कि चीन में ऐसे राजनीतिज्ञ शासन करें, जो हमसे मित्रता का सम्बन्ध स्थापित कर सकें। सबसे बढ़ कर बात यह है कि जापान व चीन पड़ोसी व परस्पर पुराने मित्र राष्ट्र हैं और इसलिए पारस्परिक सहयोग, उन्नति व वैभव के आदर्श की कल्पना कठिन नहीं है।" कुछ दिन बाद उक्त परराष्ट्र सचिव ने ही कहा था—"जापान का एक ही उद्देश्य है कि वह चीन को प्रसन्न और शान्त देखे। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए जापान को कुछ कठोर रवैया स्वीकार करना पड़ा है। वह चीन को अपनी नीति

बदलने के लिये विवश कर रहा है।" अपने भाव को और भी स्पष्ट करते हुए उन्होंने आगे कहा था कि "हम चाहते हैं कि चीन के राजनीतिज्ञ पूर्वीय एशिया के सम्बन्ध में कुछ अधिक उदार दृष्टिकोण रखें, उन्हें शीघ्र ही अपनी भूल स्वीकार कर लेनी चाहिये। एक नये अध्याय का सूत्रपात करते हुए उन्हें जापान की उच्चाकांक्षाओं और उच्च आदर्शों को स्वीकृत करके उसके साथ एक स्वर से काम करना चाहिये।"

कितनी सुन्दर भावनाएं हैं! जापान पूर्व में शान्ति चाहता है, वह अत्याचारपीड़ित जातियों का उद्धार करना चाहता है, वह चीन में एकता और शान्ति स्थापित करने में चीन सरकार को सहायता देना चाहता है, आध्यात्मिकता और सच्ची शान्ति की शिक्षा देना चाहता है। इनका विरोध चीन क्यों करे? क्यों न चीन जापान के साथ मिलकर शान्ति और एकता स्थापित करके अपनी बलवृद्धि करे? लेकिन जापानी राजनीतिज्ञों के इन सुन्दर और मधुर शब्दों की तह में जो भावना काम कर रही है, वह हिरोता के शब्दों के अन्दर से फूट कर प्रकट हो ही जाती है। वे कहते हैं कि चीन के राजनीतिज्ञों को पूर्वीय एशिया के सम्बन्ध में अधिक 'उदार दृष्टिकोण' रखना चाहिये। इस उदारता को भी वे आगे स्पष्ट करते हैं कि जापान की उच्चाकांक्षाओं और आदर्शों को अपना कर उसके साथ एक स्वर से काम करना चाहिये। अर्थात् दोनों देशों को एक हो जाना चाहिये। वस्तुतः जापान की हार्दिक इच्छा यही है कि चीन 'चीनी' के संकुचित दृष्टिकोण

से न सोच कर पूर्वीय एशिया के दृष्टिकोण से सोचे और इस के लिये जापान की उच्चाकांक्षाओं को अपना ले।

जापान की महत्वाकांक्षा

जापान की ये उच्चाकांक्षाएं क्या हैं, इनका पता जापान के प्रधानमन्त्री टनाका की उस महत्वपूर्ण गुप्त योजना से चलता है, जो उन्होंने १९२७ ई० में जापानी सम्राट् को पेश की थी। वह योजना बहुत ही महत्वपूर्ण है और पिछले ८ सालों से अब तक जापान उसी योजना को अपना रहा है। इस लिए इस पर जरा विस्तार से विचार करने की जरूरत है। टनाका अपनी योजना में लिखते हैं :—

"चीन को जीतने के लिए हमें पहले मंचूरिया व मंगोलिया को जीतना चाहिये। यदि हम चीन को जीत लेते हैं, तो सभी एशियाई देश और दक्षिण-समुद्र के देश हम से डरने लगेंगे और हमारे आगे हथियार धर देंगे। तब संसार यह समझने लगेगा कि पूर्वीय एशिया हमारा है............

"चीन के सभी साधन व सामग्री जब हमारे हाथ में आ जायगी, तब हम भारत-विजय के लिए भी प्रयाण कर सकेंगे और उसके बाद आर्किपेलागो, (जापान के दक्षिण के द्वीपसमूह) एशिया माइनर और मध्य एशिया की बारी आ जायगी। यूरोप पर भी हम आक्रमण कर सकेंगे। लेकिन सब से पहले मंचूरिया और मंगोलिया पर अधिकार या नियन्त्रण होना चाहिये।......

"यह भी प्रतीत होता है कि उत्तरी मंचूरिया के सम्पत्ति-शाली प्राकृतिक साधनों पर अधिकार करने के लिए रूस से लोहा बजाना भी अपने कार्यक्रम का अंग बनाना पड़ेगा।......जल्दी या देर में हमें सोवियट रूस से लड़ना ही होगा।......

"एक दिन हमें अमेरिका से भी जूझना होगा। यदि हम चीन पर अपना अधिकार करना चाहते हैं, तो हमें संयुक्त राष्ट्र अमेरिका को कुचल देना होगा," क्योंकि यह जापान के मार्ग में बहुत बाधा डालता है।

इस वक्तव्य से दो ही परिणाम निकाले जा सकते हैं। पहला तो यह कि शायद जापान में शान्ति और विजय परस्पर पर्यायवाची शब्द समझे जाते हैं और दूसरा यह कि जापान में आशावाद और कपोल-कल्पनाओं में कोई भेद नहीं समझा जाता। इस वक्तव्य के अगले अंशों में बताया गया है कि यह महान् उद्देश्य किन उपायों से पूर्ण किया जाय। वे अंश भी बहुत महत्वपूर्ण हैं :—

"आत्मरक्षा और दूसरों की रक्षा की दृष्टि से जापान बिना तलवार व खून की नीति बरते पूर्वीय एशिया में कठिनताओं पर विजय नहीं पा सकता।......

"इससे भी खतरनाक बात यह है कि चीनी जनता किसी भी दिन जाग सकती है।...... आज हम यह समझते हैं कि चीनी हमारे माल के खरीदार मात्र हैं, लेकिन हमें भय है कि जिस दिन चीनी एक हो जायँगे, उसी दिन से चीन के उद्योगधन्धे भी

चमकने लगेंगे। इसलिए हमें अभी से अपने सैनिक उद्देश्यों की पूर्ति में लग जाना चाहिये, जिस से हम चीन के सैनिक, राजनैतिक और आर्थिक विकास को अभी से नष्ट कर सकें।...... एशिया महाद्वीप के प्रति हमारी नीति की सफलता की यही कुंजी है।

"मंचूरिया और मंगोलिया पूर्वीय एशिया के बेलजियम हैं। रूस व अमेरिका से युद्ध के समय हमें यह आग्रह करना चाहिये कि युद्ध की सब हानियां इन्हीं देशों को हों।"

"जब अन्दरूनी और बाहरी मंगोलिया में हमारे आदमी काफी संख्या में पहुंच जावें, हम वास्तविक दाम का दसवां हिस्सा मूल्य देकर जमीन खरीद लेंगे... (तब) यह सवाल ही न रहेगा कि मंगोलिया जापानियों का है या मंगोलियनों का ?...... इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमें युद्धमन्त्रिमण्डल के गुप्त कोष से १० लाख येन निकालने चाहियें और बाहरी व अन्दरूनी मंगोलिया में ४०० रिटायर्ड अफसर भेजने चाहियें। वे अफसर चीनी नागरिकों की पोशाक में रहकर अध्यापक का काम करेंगे। वे जनसाधारण में ही रहेंगे और मंगोलियन सरदारों आदि का विश्वास-सम्पादन करने की कोशिश करेंगे। ......

"मंगोलिया की सस्ती और बढ़िया ऊन! .... हम इसे शेष संसार से छिपा रहे हैं, जिससे इंगलैंड व अमेरिका हमारे साथ मुकाबला न कर सकें।"

इस विस्तृत गुप्त योजना में से एक अंश और, जो यह सिद्ध

करेगा कि किस तरह जापान अपनी बौद्ध धर्म की ऐतिहासिक प्रथाओं को काम में ला रहा है। "दक्षिणी मंचूरियन रेलवे के विकास में अन्य राष्ट्रों को भी निमन्त्रण देंगे और इस तरह हम सारे संसार को धोखा दे कर मंगोलिया और मंचूरिया में आगे बढ़ते जायेंगे।"

यह वह योजना है, जिससे जापान की सब महत्त्वाकांक्षाओं का ज्ञान होता है और १९३१ से अब तक की उसकी सब कार्रवाइयां समझ में आ जाती हैं। बहुत बरसों बाद जापान के उच्चाधिकारियों ने इस योजना की सत्यता से इनकार किया, लेकिन जापान का आचरण यह बताता है कि यह योजना असत्य नहीं है।

जापान की चीन को जीतने की महत्त्वाकांक्षा भी अकारण नहीं है। जापान की आन्तरिक समस्यायें बहुत पेचीदी हैं और उनका हल यूरोप के शिष्य जापान के अर्थशास्त्रियों, पूंजीपतियों और राजनीतिज्ञों की सम्मति में केवल साम्राज्यवाद है।

जनसंख्या की समस्या

जापान की सब से भीषण समस्या है उसकी भीषण रूप से बढ़ती हुई जनसंख्या। सन १८७२ में जापान की जनसंख्या ३ करोड़ तीस लाख थी, १९०२ में यह ४ करोड़ ६० लाख तथा १९२९ के अन्त में ६ करोड़ ५७ लाख हो गई। अर्थात् ५७ वर्षों के भीतर सौ प्रतिशत वृद्धि हुई। इस बढ़ती हुई जनसंख्या

के लिए जापान का छोटा सा टापू अत्यन्त अपर्याप्त है। कुछ देशों की आबादी की घनता निम्नलिखित तालिका से प्रकट हो जायगी :—

आस्ट्रेलिया	२.२	प्रति मील
संयुक्त राष्ट्र अमेरिका	४१.३	,,
मलाया	८१.८	,,
चीन	१०४.३	,,
जापान	३४६.४	,,

जनसंख्या की वृद्धि और आबादी की इस घनता का एक मात्र हल है दूसरे देशों में जाकर बसना। इसीलिए २०वीं सदी के दूसरे दशक से जापानी भारी संख्या में कोरिया, दक्षिणी मंचूरिया और अमेरिका आदि देशों में जाकर बसने लगे। लेकिन १९२४ में अमेरिका ने कानून बना कर जापानियों का अमेरिका में बसना बन्द कर दिया। आस्ट्रेलिया बहुत विस्तृत प्रदेश है और उसकी आबादी भी बहुत ही कम है, तथापि अंग्रेजों ने जापानियों के लिए आस्ट्रेलिया के द्वार भी बन्द कर दिये हैं। अब जापान क्या करे ? इस जनसंख्या को खपाने के लिए जापान कोई देश चाहता है और इसीलिए पड़ोस के चीन पर उसकी नज़र है।

अच्छा बाजार

गत योरोपीय युद्ध के बाद से जापान ने अद्भुत गति से संसार के सर्वोत्कृष्ट व्यवसायी देशों में विशेष स्थान प्राप्त कर

लिया है। अपने व्यावसायिक चातुर्य, अद्भुत संगठन, व्यापारिक बुद्धिमत्ता तथा सस्ती मजदूरी आदि के कारण वह ब्रिटेन और अमेरिका की भी टक्कर लेने लगा। इस प्रतिस्पर्धा से बचने के लिए ब्रिटेन ने अपनी राजनैतिक सत्ता का उपयोग किया। अपने विस्तृत साम्राज्य में उसने जापानी माल पर भारी भारी कर लगा दिये। अन्य देशों ने भी तटकरों की बड़ी बड़ी दीवारें खड़ी कर के जापानी माल के लिए दरवाजा बन्द कर दिया। अपने माल की खपत के लिए जापान ने भी साम्राज्य-विस्तार को अनिवार्य समझा। राजनैतिक प्रभुत्व पाकर ही वह ब्रिटेन तथा अन्य राष्ट्रों को जवाब दे सकता था। ४० करोड़ की आबादी वाला विशाल चीन यदि किसी देश का ग्राहक हो जाय, तो उसके कल-कारखाने दिन दूने रात चौगुने उन्नति करेंगे। किसी व्यवसायी ने हिसाब लगाया था कि यदि चालीस करोड़ चीनी अपनी कमीज की लम्बाई एक एक इंच भी और बढ़ा दें तो जापान की सब मिलें दिन रात चलने लग जायं।

कच्चा माल

चीन सिर्फ बढ़िया बाजार ही नहीं है, लेकिन कच्चा माल पैदा करने वाले देशों में भी बहुत ऊंचा स्थान रखता है। चीन प्राकृतिक दृष्टि से बहुत साधनसम्पन्न है। जापान में प्राकृतिक पदार्थों की कमी है। उसे कच्चा माल लेने के लिए अन्य देशों का मुंह ताकना पड़ता है। उसे यह भय है कि संसार के अन्य

देश किसी भी समय उसे कच्चा माल देने से इनकार कर देंगे। चीन और मंगोलिया के हाथ में आ जाने पर जापान सदा के लिए इस भय से निश्चिन्त हो जायगा। जेहोल, चहार, सुइयान, कांसू, निंगसिया और चिघाई प्रान्त ऊन के लिए प्रसिद्ध हैं। चीन सरकार की १६३६-३७ की रिपोर्ट के अनुसार चीन में ५४०००० पिस्कल ऊन तैयार हुआ था। उपर्युक्त प्रान्तों में क्रमशः २७०००, ६४०००, ६४०००, ८००००, ३०००० और १६६००० पिस्कल ऊन तय्यार हुआ। यही हाल कपास का है। कपास के लिए भी आज जापान को भारत व अमेरिका का मुख ताकना पड़ता है। मंचूरिया हाथ में आजाने पर जापान वहां कपास उपजाने का खूब प्रयत्न कर रहा है। जापान को विश्वास है कि कुछ ही सालों में वह चीन से सब कच्चा माल प्राप्त कर सकेगा। इसका परिणाम यह होगा कि भारत, अमेरिका और आस्ट्रेलिया आदि अन्य देशों का, जहां से आजकल जापान कच्चा माल मंगाता है, बहुत सा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मारा जायगा। जापान चीन से ही बहुत सस्ते दामों में कच्चा माल प्राप्त कर सकेगा। ऊन और कपास के अतिरिक्त चीन में अन्य अनेक पदार्थों की खेती भी बहुत होती है। सोयाबीन के लिए मंचूरिया बहुत प्रसिद्ध है। चावल, गेहूं, ज्वार, बाजरा और चाय की खेती भी चीन में बहुत होती है। यदि कभी संसार के देश जापान का आर्थिक बहिष्कार भी कर दें, तो जापान भूखों नहीं मर सकता।

इसी तरह चीन में खनिज पदार्थों की भी कोई कमी नहीं है। वर्तमान व्यवसाय के लिए अत्यन्त अनिवार्य सामग्री भी चीन से जापान को सुगमता से मिल सकती है। उत्तर चीन में कोयलों की खानों की बहुतायत है। शांसी सूबे का करीब ३०००० वर्ग मील कोयलों की खानों से भरा हुआ है। लोगों का अनुमान है कि अकेले शांसी में इतना कोयला है कि वह सारे संसार की आवश्यकता हजारों वर्ष तक पूरा कर सकता है। ये कोयले की चट्टानें ४०–४५ फीट तक मोटी है। खानों के पहाड़ियों में होने से खुदाई भी बहुत व्ययसाध्य नहीं है। १९३४ में २॥ लाख टन कोयला इन खानों से निकाला गया। जेहोल, शांसी, चहार यूनन, हुनान और सिकांग प्रांतों में कोयला खूब निकलता है। विशेषज्ञों का अनुमान है कि चीन में २॥ लाख खरब टन से कम कोयला खानों में नहीं है। लोहा लियोनिंग और चहार प्रान्तों में मिलता है। लोहे की वार्षिक निकासी इन प्रांतों में लगभग २३ लाख टन की है। मंचूरिया में भी लोहे की खानें हैं। तांबे की खानें उत्तर चीन में हैं। टीन भी चीन के मुख्य खनिज पदार्थों में से है। पारा और नमक आदि भी मिलते हैं। शांसी, लियोनिंग और होपेयी प्रातों में मिट्टी के तेल के सोते हैं। चीन के आंतरिक व्यापार या व्यवसाय पर जिस भीषणता से विदेशी राष्ट्रों ने अधिकार जमा रखा है, जापान उस सब पर भी अपना अधिकार चाहता है। मतलब यह है कि चीन का पूरी तरह आर्थिक शोषण करके जापान संसार का सबसे अधिक समृद्ध व सम्पन्न राष्ट्र

बनने की चिन्ता कर रहा है। इसमें सन्देह नहीं कि यह योजना पूरी होने पर जापान संसार का सबसे समृद्ध राष्ट्र बन जायगा।

अक्तूबर १९३७ में अमेरिकन राष्ट्रपति रूज़वेल्ट के एक भाषण की आलोचना करते हुए जापान सरकार के प्रकाशन विभाग के अध्यक्ष तत्सुओ कवाई ने कहा था—"संसार मनुष्य मात्र का है, जिसमें प्रत्येक परिश्रमी व्यक्ति को आनन्द से जीवन व्यतीत करने का अधिकार है। फिर हम देखते हैं कि उसमें सुस्त तथा आलसी लोग आनन्द कर रहे हैं और बेचारे ईमानदार और परिश्रमी व्यक्तियों के पास जीवन के साधन भी नहीं है, इससे अधिक अन्यायपूर्ण बात और क्या हो सकती है? पिछले पचास सालों में जापान की जनसंख्या बहुत बढ़ गई है। उसके लिये उसने कुछ स्थान मांगा, तो उसे सूखा जबाब दे दिया गया। ··· जापानियों ने न्याय की आवाज उठाई है। उनके पास प्राकृतिक पदार्थ कम हैं और उन्हें वे उन देशों से चाहते हैं, जो उन पदार्थों से सम्पन्न हैं। यदि वे इस मांग को स्वीकार नहीं करते तो युद्ध के अतिरिक्त और हो ही क्या सकता है? हम तो यही चाहते हैं कि संसार मनुष्यमात्र के लिए है और हम लोग मेहनती व ईमानदार हैं, अतः हमें भी संसार में आनन्द से रहने का अधिकार होना चाहिये। जापान चाहता है कि महाद्वीप शांति के साथ उन्नति करे और इसीलिए चीन का सहयोग चाहता है। चीन इसका निषेध करता है और यही युद्ध का कारण है।"

एक और जापानी अधिकारीने चीन पर आक्रमण का कारण

बताते हुए कहा था कि "जापान इसलिए चीन में युद्ध कर रहा है कि जापान के जीवन मरण का यह अनिवार्य प्रश्न है। चीन को जापान के अस्तित्व में सहायक होना ही चाहिये।"

वस्तुतः जब तक आर्थिक साम्राज्यवाद, पूंजीवाद और मशीनरीवाद कायम है, जापान की यह महत्वाकाँक्षायें भी कम नहीं हो सकतीं। सिर्फ जापान ही इसके लिए जिम्मेवार नहीं, ब्रिटेन, फ्रांस, इटली, और अमेरिका भी साम्राज्यवादी देश हैं। सभी ने बलप्रयोग, धोखे व छल से ही अपने बड़े २ राज्य कायम कर लिये हैं और जब कोई देश आजाद बनना चाहता है, तो उसे यही साम्राज्यवादी देश कुचल देते हैं।

१६०० ई० तक ही संसार के विभिन्न भागों की कितनी भूमि यूरोप के पूंजीवादी राष्ट्रों में बंट चुकी थी, यह निम्न तालिका से स्पष्ट हो जायगा:—

अफ्रीका	६०·४	प्रति शत
पोलीनेशिया	६८·६	"
आस्ट्रेलिया	१००	"
एशिया	५६·६	"
अमेरिका	२७.२	"

एशिया और अमेरिका में बहुत सी जो अनधिकृत भूमि मालूम होती है, वह वस्तुतः ऐसी भूमि है, जो पहले से ही किसी न किसी स्वतन्त्र देश के अधीन रही है। खाली जमीन तो १६वीं सदी की समाप्ति तक कहीं बची ही नहीं और जो थोड़ी

बहुत थी भी वह आगे आने वाले कुछ सालों में बट गई। १९१४ में भिन्न भिन्न साम्राज्यवादी राष्ट्रों ने अपनी जनसंख्या के अनुपात से उपनिवेशों की कितनी भारी जनसंख्या पर अधिकार कर लिया था, यह भी निम्नलिखित तालिका से प्रकट होगा :—

देश	आबादी (करोड़ों में)	उपनिवेशों की आबादी (करोड़ों में)
ब्रिटेन	४·६५	३९·३५
रूस	१३·६२	३·३२
फ्रांस	३·९६	५·५५
जर्मनी	६·४९	१·२३
जापान	५·३०	१·९२
सं० रा० अ०	९·७०	·९७

रूस क्रान्ति के नायक लेनिन के मतानुसार साम्राज्यवाद पूंजीवाद के चरम विकास की वह वर्तमान अवस्था है (१) जब बड़े २ कारखानों द्वारा अधिक वस्तुओं का एक साथ उत्पादन और पूंजी का एकत्रीकरण यहां तक बढ़ गया है कि इजारे की स्थिति उत्पन्न होगई है, (२) जब उद्योग व्यवसाय में भी बैंकों की पूंजी के घुस जाने के कारण आर्थिक जगत में एक तरह का धनिक तंत्र स्थापित होगया है, (३) जब पूंजी के अन्य देशों में निर्यात को विशेष महत्व प्राप्त होगया है, (४) जब पूंजीपतियों की अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं ने अपना पूर्ण अधिकार स्थापित कर सारे संसार को आपस में बांटना शुरू कर दिया है और (५) जब

बड़े बड़े पूंजीवादी राष्ट्रों में समस्त संसार की भूमि बांटी जा चुकी है।

जापान का साम्राज्यवाद भी लेनिन द्वारा बताई गई इन अवस्थाओं का अपवाद नहीं था। ये सब परिस्थितियां जापान में अब तक पैदा हो चुकी थीं। संसार के किसी और देश पर वह अधिकार कर नहीं सकता था, सिर्फ चीन बच रहा था। चीन भी वस्तुतः बचा हुआ नहीं था, बहुत से राष्ट्रों ने वहां बहुत सी अनुचित रियायतें लेकर उन्हें अपना आर्थिक उपनिवेश बना डाला था। जापान ने अन्य सब राष्ट्रों को निकालने के लिए 'एशिया एशियावासियों के लिए है' का नारा लगाकर चीन पर आक्रमण भी कर दिया। वस्तुतः जब तक पूंजीवाद और मशीनरीवाद मौजूद है, तब तक इन दोनों के परिणामस्वरूप साम्राज्यवाद को भी नष्ट नहीं किया जा सकता।

सैनिक महत्व

जापान के चीन और विशेष कर मंगोलिया व मंचूरिया पर अधिकार कर लेने का सैनिक महत्त्व भी कम नहीं है। जब से चीन के साथ जापान का सम्बन्ध स्थापित हुआ, रूस से उसका संघर्ष भी प्रारम्भ हुआ। दोनों की चीन पर दृष्टि थी और दोनों चीन को अपने हस्तगत करना चाहते थे। जब दोनों में संघर्ष बहुत बढ़ गया, तब १९०४ में दोनों देशों में युद्ध छिड़ गया। इस युद्ध के बाद पोर्ट्स माउथ की सन्धि द्वारा दोनों राष्ट्रों

ने मंचूरिया को बांट लिया। युद्ध में परास्त होकर रूस कुछ साल के लिए ढीला पड़ गया, लेकिन चीन पर उस की लोलुप दृष्टि वैसी ही बनी रही। समय समय पर जो कुछ ले सकता था, वह छीनता रहा। रूस की महान् क्रान्ति के बाद भी यद्यपि सोवियट रूस ने अपने अनेक अधिकार व रियायतों को छोड़ने की घोषणा कर दी थी, तथापि चीन में उसकी दिलचस्पी कम न हुई थी। चीन से नई सन्धि करके उसने फिर कई रियायतें प्राप्त कर लीं। इसलिए जापान से उसका संघर्ष फिर बढ़ने लगा। सोवियट रूस ने साइबीरिया के पूर्वीय तट व ब्लाडीवास्टक बन्दरगाह में सैनिक किलों को खूब सुदृढ़ कर लिया है। बाहरी मंगोलिया पर भी उस का बहुत प्रभुत्व है। वहां तो सोवियट रिपब्लिक भी कायम हो गई है, इसलिये जापान हमेशा रूस से सशंक रहता है।

जापान चीन की उत्तर पश्चिमी संरक्षक सीमा को तोड़ देना चाहता है। यह सीमा उसके उत्तर पश्चिम में मंगोलियन प्लेट पर है, जो पूर्व दिशा में किंघन पहाड़ से आरम्भ होती है और पश्चिम में पामीर तक जाती है। पश्चिमी सीमा लगभग १००० मील लम्बी है, जिसमें बाह्य मंगोलिया का भी कुछ भाग है तथा सिंगकियांग, कांसू, निंगसिया, सुइयान और चहार हैं। १६२४ ई० में जब बाहरी मंगोलिया स्वतन्त्र हो गया, तो चीन की सीमा गोबी के मरुस्थल के दक्षिण में आ गई। १६३१ में मंचूरिया, जेहोल, पूर्वी होपेई और उत्तरी चहार निकल जाने से चीन की सीमा सिकुड़ कर बड़ी दीवार के अन्दर आ गई। सुइयान उत्तर चीन और

उत्तर पश्चिम के बीच एक द्वार ही नहीं, बरन् इन भागों में आने जाने वाले मार्गों का केन्द्र भी है। यहां से साइबीरिया, जेहोल, सिंगकियांग, शांसी और होपेई को मार्ग जाते हैं। सुइयान पर अधिकार करके वह उत्तरी चीन और उत्तर पश्चिमी चीन को भी पृथक् कर देगा।

जापान की आन्तरिक अव्यवस्था

जापान की आन्तरिक राजनैतिक व्यवस्था भी इस प्रकार के आक्रमण का कारण है। जापान आधुनिक उद्योगवाद और मध्य-कालीन सामन्तशाही तथा स्वेच्छाचार एवं सैनिक नियन्त्रण की खिचड़ी का एक अजीब नमूना है। भूस्वामी, शासकों और सैनिक-वर्ग ने मिल कर वहां एक ऐसी सी व्यवस्था उत्पन्न करदी है कि जापान के सभी क्षेत्रों में थोड़े से लोगों का प्रभुत्व हो गया है। देश के उद्योग और राजनीति पर थोड़े से बलशाली परिवारों का एकाधिकार कायम हो गया है। एक अर्थशास्त्री ने हिसाब लगाया था कि इस समय जापान में जितना व्यवसाय और व्यापार फैला हुआ है, उसमें से ७० फी सदी का सम्बन्ध १५ परिवारों से है। ये १५ परिवार जापान में सब से अधिक प्रभावशाली हैं। इन सब ने मिल कर सम्राट् को सर्वोपरि अधिकारी मान लिया है और समस्त जापान में सम्राट् के प्रति अगाध श्रद्धा का भाव उदय करके अपना प्रभाव कायम रखने की कोशिश की है। वंशभक्ति का प्रचार करके उसका 'दैवी शक्तिसम्पन्न' सम्राट् मे

सम्बन्ध जोड़ दिया गया है। असल में सम्राट् एक प्रतीक है और उसके नाम पर बड़े बड़े भूस्वामी — इन्हीं के हाथ में जापान के उद्योगधन्धे भी हैं—और सैनिकवर्ग शासनसत्ता का संचालन करता है। वस्तुतः जापान में बौद्ध धर्म की अपेक्षा भी शिण्टो धर्म अधिक राष्ट्रीय है। यह धर्म पूर्वजों की — पुराने सम्राटों और वीर पुरुषों की और विशेष कर लड़ाई में मारे जाने वाले वीर पुरुषों की पूजा पर बहुत जोर देता है। देशप्रेम और सम्राट्-भक्ति के प्रचार के लिए इस धर्म को हथियार बनाया जा रहा है। १६१५ के करीब जापान में सम्राट्-भक्ति और साम्राज्यवाद के सम्मिश्रण से एक नये संप्रदाय का भी आविर्भाव हुआ। इसका नाम 'ओमोतो क्यो' है। इस सम्प्रदाय का मुख्य सिद्धान्त यह है कि जापान सारी दुनिया का शासक हो और सम्राट् उसका प्रमुख सत्ताधारी। इस सम्प्रदाय की ओर से कहा गया था कि:—"हमारा लक्ष्य सिर्फ एक है और वह यह कि जापान का सम्राट् सारे संसार का शासक बन जाय, क्योंकि संसार में वही एक ऐसा शासक है, जिसमें सबसे प्राचीन स्वर्गवासी पूर्वज से विरासत में मिली हुई आध्यात्मिक उद्देश्य के प्रचार की भावना बाकी है।"

वस्तुतः सम्राट-भक्ति और साम्राज्यवाद का यह प्रचार भी वहां के उन थोड़े से प्रभावशाली वंशों की एक चाल थी, जिन्होंने समस्त जापान के सभी क्षेत्रों पर एकाधिकार कर रखा था। इस बढ़ते हुए पूंजीवाद और सत्तावाद का एक स्वाभाविक परिणाम

था साधारण जनता का निरन्तर शोषण। आबादी तेजी से बढ़ रही थी और उसके साथ साथ जापान की साधारण जनता की दरिद्रता भी। जापान के बढ़ते हुए व्यवसाय के बावजूद भी वहां की जनता की हालत बहुत बुरी है। युद्धों के कारण उस पर नित प्रति नये टैक्स लगाये जा रहे हैं। किसानों की हालत भी बहुत खराब हो रही है, इसलिए साम्यवाद की भावना का उत्पन्न होना भी स्वाभाविक था। शनैः शनैः परिस्थिति गम्भीर होने लगी, तो दमन भी शुरू हुआ। १९२५ के एक शान्तिरक्षा कानून के अनुसार राष्ट्र के विधान को बदलने या व्यक्तिगत सम्पत्ति की प्रणाली नष्ट करने के प्रयत्न के लिए ५ वर्ष की कैद से मृत्युदण्ड तक की सजा दी जा सकती थी। १९२८ में साम्यवाद का दमन और भी तेज़ी से हुआ। एक ही रात में एक हज़ार से ज्यादा गिरफ्तारियां हुईं; १९३२ तक यह दमनचक्र और भी बढ़ गया था। अक्तूबर १९३२ में २२५० आदमी पकड़े गये थे। साम्यवाद की ओर इतनी तेजी से झुकती हुई जनता का ध्यान अपने पूंजीवादी अत्याचारों की ओर से हटाने के लिए आवश्यक था कि उसका ध्यान किसी दूसरी आकर्षक वस्तु की ओर खींचा जाय। इसके लिए चीन पर आक्रमण और उससे होने वाले लाभों के स्वर्गीय स्वप्नों से बढ़ कर और अधिक क्या आकर्षक हो सकता था? जब जब किसी देश में अत्याचारी शासन के विरुद्ध जनता में असन्तोष उत्पन्न होने लगता है, यह स्वाभाविक है कि शासक उसका ध्यान किसी दूसरी ओर खींचने का प्रयत्न

करें। इतिहास बताता है कि साम्राज्यवाद या किसी दूसरे देश से युद्ध छेड़ देना इस दृष्टि से सब से अधिक कारगर अस्त्र साबित हुआ है। जापान ने भी इस नीति का अवलम्बन किया।

एक और भी कारण था, जिसने साम्राज्यवाद को इस रूप में उत्तेजना दी। जापान के सैनिक अधिकारियों में भी दो दल हैं चोशू और सत्सुमा। दोनों ही दल अपने अपने प्रभुत्व के लिए संघर्ष करते रहे हैं। सत्सुमा जाति के जनरल अराकी ने प्रभुत्व में आते ही अपने प्रभाव को कायम रखने के लिए विजययात्रा की नीति स्वीकार की। सैनिक तो विजय करके ही अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा कर सकता है। जनरल अराकी की नीति 'कोरा' (राजमार्ग) कहलाती है। इसका अर्थ है अपने देश में दमन और विदेशों में आक्रमण। जापान की वर्तमान साम्राज्यवादी नीति का आधार इसी दल की नीति है।

बारहवाँ अध्याय

चीन और ब्रिटेन

चीन पर जापान का आक्रमण जेहोल-विजय के साथ १६३३ ही में समाप्त नहीं हो गया। वह अब तक जारी है और आजकल भी हम सुदूरपूर्व में चीन के वक्षःस्थल पर होते हुए प्रलयङ्कर युद्ध की गर्जना सुन रहे हैं, लेकिन जापान के नये युद्ध की कथा कहने से पूर्व एक बार अन्य राष्ट्रों पर भी नज़र डाल लेनी चाहिये कि चीन के साथ अब उनका क्या सम्बन्ध था। जिन महाशक्तियों ने गत यूरोपीय महासमर से पहले तक चीन में भारी लूटखसोट मचा रखी थी, अब उनकी नीति बदल गई थी

या नहीं, यह देखने से हम चीन की समस्या का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू भी जान सकेंगे।

अफीम का कलंक

जिन यूरोपीय महाशक्तियों को चीन में पैर पसारने का मौका मिला था, उनमें ब्रिटेन और रूस सब से आगे थे। दूसरे और तीसरे अध्याय में हम उनके ज़ोर जुल्म व ज़बर्दस्तियों का कुछ निर्देश कर आये हैं। ब्रिटेन का चीन के साथ जो सम्बन्ध रहा है, वह ब्रिटेन के इतिहास पर वस्तुतः एक बड़ा भारी कलंक है। अपने आर्थिक लाभ के लिए एक समस्त राष्ट्र को अफीमची बना देना और यदि वह राष्ट्र इसका विरोध करे, तो तोपों की सहायता से उसका दमन करके उस पर अफीम लादना सचमुच ऐसा भारी पाप है, जिसका उदाहरण संसार के साम्राज्यवाद के इतिहास में ढूंढे नहीं मिलता। लेकिन ब्रिटेन ने चीन पर अफीम लादने में कभी संकोच नहीं किया। *

* जब सारे संसार में अफ़ीम के विरुद्ध आन्दोलन हुआ, तब ब्रिटेन ने चीन के अफ़ीम बहिष्कार आन्दोलन में वस्तुतः सच्ची सहायता दी। १९०६ में पार्लमेण्ट में अफ़ीम-व्यापार को बन्द करने का प्रस्ताव पास हुआ। १९०८ में ब्रिटेन व चीन की सरकारों ने एक समझौते पर हस्ताक्षर कर दिये, जिसके अनुसार चीन ने अफीम की खेती में क्रमशः कमी करना मंजूर किया और ब्रिटेन ने प्रतिवर्ष अफीम के निर्यात

प्रायः सम्पूर्ण १६ वीं सदी में चीन पर ब्रिटेन का अबाधित आर्थिक एकाधिपत्य रहा है। अफीम-युद्ध के बहुत समय बाद तक भी कोई महाशक्ति ब्रिटेन के मुकाबले में नहीं आई। हांककांग जैसे आर्थिक और सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान पर इंगलैंड का ही कब्जा था। १६१३ तक भी चीन के आयात व्यापार का ५० फीसदी ब्रिटेन से या ब्रिटिश बन्दरगाह हांगकांग के द्वारा आता था। चीन में लगी पूंजी, चीन के बैंक, चीन की रेलवे कम्पनियां और बहुत सी खानें प्रायः ब्रिटेन के हाथ में थीं। १६वीं सदी के अन्तिम दशक में अन्य अनेक राष्ट्र भी चीन के मैदान में ब्रिटेन की प्रतिस्पर्धा के लिए आ खड़े हुए, लेकिन इससे ब्रिटेन की लूट में किसी तरह की कमी न हुई, क्योंकि रूस को या फ्रान्स को चीन सरकार ने कोई रियायत दी है, इसलिए हमें भी मिलनी चाहिये, यह बहाना कर के तो ब्रिटेन ने कई बार चीन के अनेक महत्वपूर्ण स्थानों पर अपना प्रभुत्व कायम कर लिया है, अधिकार कर लिया है या कहीं भारी आर्थिक, व्यापारिक और राजनैतिक सुविधायें प्राप्त कर ली हैं। १६१४ के युद्ध तक यही क्रम चलता रहा। इन सब बातों का संक्षिप्त निर्देश हम पहले कर आये हैं, उसे यहां दुहराने

में अधिकाधिक कमी करके १६१७ तक इस व्यापार को समाप्त कर देने का वचन दिया। इस तरह यह अफीम का यह पापकाण्ड समाप्त हुआ। —लेखक

की आवश्यकता नहीं। युद्ध के प्रारम्भ होते ही उसे अपनी समस्त शक्ति यूरोप में ही केन्द्रित करनी पड़ गई और इधर उसने जापान को सब कुछ करने की खुली छुट्टी दे दी। जब युद्ध समाप्त हो चुका तो ब्रिटेन ने देखा कि जापान की शक्ति बहुत अधिक बढ़ गई है, वस्तुतः ब्रिटेन यह नहीं समझता था कि जापान इतना अधिक सम्पन्न व शक्तिशाली हो जायगा, लेकिन अब तो कुछ हो नहीं सकता था। ब्रिटेन के राजनीतिज्ञों ने भी समझा कि पूर्व में बढ़ते हुए इस देश के साथ मित्रता करने में ही उसका लाभ है। यही कारण है कि जब वर्सेलीज की शान्तिसभा में चीनी प्रतिनिधियों ने क्याओ चाओ और शांतुग वापिस लेने की मांग पेश की, तब किसी ने ध्यान नहीं दिया। अमेरिकन राष्ट्रपति मि० विलसन ने न्याय, सत्य, स्वभाग्यनिर्णय आदि जिन सुन्दर शब्दों में चीन को युद्ध में प्रेरित होने की अपील की थी, वे सब शब्द दुहराये गये, लेकिन कोई टस से मस न हुआ। वस्तुतः ब्रिटेन ने तो जापान को इसी शर्त पर प्रेरित किया था कि ये प्रदेश तुम्हीं ले लेना। यद्यपि ब्रिटेन को चीन के सम्बन्ध में ऐसा करने का अधिकार नहीं था, लेकिन निर्बल की लुगाई सब की भाभी। चीन से पूछने की ब्रिटेन ने जरूरत ही नहीं समझी। फिर एक और बात भी थी। यदि चीन की यह मांग स्वीकार कर ली जाती, तो चीन इसी का उदाहरण देकर ब्रिटेन और फ्रान्स से भी कह सकता था कि जनाब, आप भी तो तशरीफ का टोकरा वापस ले जाइये। फलतः ब्रिटेन ने चीन के साथ कोई सहानुभूति

न दिखाई। साम्राज्यवाद के गुरु ब्रिटेन से इससे भिन्न आशा भी नहीं हो सकती थी।

जापान को ब्रिटेन की सहायता

वस्तुतः यह पहला अवसर न था, जब कि इंगलैंड ने चीन के विरुद्ध सहायता दी थी। इससे पहले भी वह अनेक महत्वपूर्ण अवसरों पर जापान को सहायता दे चुका था। रूस का हौवा ब्रिटेन को किस तरह डराता रहा है, यह हम भारतीयों से छिपा नहीं है। भारत सरकार रूस का ही डर दिखा कर सीमान्त की फौजी तय्यारियों पर करोड़ों रुपया स्वाहा करती रही है। चीन में रूस के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने के लिए उसने जापान को खड़ा करने का निश्चय किया। यूरोपीय राजनीति में उसके प्रतिस्पर्धी अन्य भी अनेक राष्ट्र चीन में अपना प्रभाव बढ़ा रहे थे। उनकी प्रगति रोकने के लिए भी उसने जापान को बढ़ावा देना उचित समझा। वस्तुतः उसी ने जापान की समुद्रसेना को बनाया, संगठित और शिक्षित किया। १८९४ में जापान और ब्रिटेन में समझौते के पन्द्रह दिन बाद ही जापान ने चीन से लड़ाई की घोषणा कर दी। रूस, फ्रान्स आदि राष्ट्रों ने जापान पर लियाओ तुंग वापस देने पर जब जोर डाला, तब भी ब्रिटेन ने रूस, फ्रान्स आदि का साथ न दिया। इसके बाद १९०२ में ब्रिटेन व जापान में एक सन्धि हुई। जिस तरह १८९४ के समझौते ने चीन-जापान युद्ध की भूमिका बांधी थी, उसी तरह इस

समझौते ने रूस-जापान युद्ध के लिए क्षेत्र तैय्यार कर दिया। ब्रिटेन ने ही फ्रान्स, जर्मनी आदि को रूस की सहायता करने से रोका। पोर्ट्स माउथ की सन्धि के समय भी ब्रिटेन ने ही जापान का साथ देकर मंचूरिया में उसका प्रभुत्वक्षेत्र स्वीकार कराया था। १६०५ में जापान को ब्रिटेन ने चीन के अधीनस्थ प्रदेश कोरिया हजम करने की खुली छुट्टी दे दी थी। इसके बाद कोरिया में जापान ने जो खेल खेला, वह हम पहले बता चुके हैं।

लेकिन वाशिंगटन कांफ्रेंस में हम देखते हैं कि ब्रिटेन ने जापान के विरुद्ध चीन का थोड़ा सा पक्ष ग्रहण किया। इसके दो कारण थे। एक तो यह कि अमेरिका का प्रबल विरोध करने का साहस इंगलैंड में न था और दूसरे यह कि जापान ने युद्ध के चार सालों में अपना व्यापार और व्यवसाय इस हद तक बढ़ा लिया था कि इंगलैंड कुछ कुछ ईर्ष्या करने लगा था। जापान की बढ़ती हुई सामुद्रिक शक्ति को रोकना भी कुछ आवश्यक था। अमेरिका ने इंगलैंड पर जापान को चीन में आगे बढ़ने से रोकने के लिए दबाव डाला। उसने तीनों देशों में सामुद्रिक शक्ति का अनुपात ५ : ५ : ३ करने का भी प्रस्ताव पेश किया। ब्रिटेन ने अमेरिका का यद्यपि साथ दिया, तथापि उसका जापान से सौहार्द सम्बन्ध नहीं टूटा। यह भी कहा जा सकता है कि ब्रिटेन विवश होकर यह सम्बन्ध बनाये रहा, क्योंकि अभी तक भी वह सिंगापुर के फौजी अड्डे को बहुत दृढ़ और सुरक्षित नहीं बना सका था।

चीनियों का कत्लेआम

प्रजातन्त्र के बाद और विशेषकर वर्सेलीज़ में होने वाली शांतिसभा में निराश होने के बाद चीन में विदेशियों के प्रति घृणा का भाव, जैसा कि हम पहले कह आये हैं, बहुत बढ़ रहा था। इसी समय अंग्रेजों ने एक ऐसा काम कर डाला, जिससे चीन में विदेशियों के और खास कर अंग्रेजों के विरुद्ध असन्तोषाग्नि बहुत ज्यादा भड़क उठी। एक जापानी कारखाने में हड़ताल के समय कुछ दंगा हुआ और एक मजदूर मारा गया। उसकी स्मृति में एक विशाल सामूहिक प्रार्थना का आयोजन किया गया था। इस अवसर पर विद्यार्थियों और मजदूरों ने साम्राज्यविरोधी प्रदर्शन भी किये। एक अंग्रेज अफसर इसे बरदाश्त न कर सका और उसने अपने आधीन सिख सैनिकों को इस भीड़ पर गोली चलाने का हुक्म दे दिया। कई विद्यार्थी मारे गये, बहुत से घायल हो गये। 'अंग्रेजों द्वारा चीनियों की हत्या' के समाचार से चीन भर में अंग्रेजों के विरुद्ध आग भभक उठी।

ब्रिटेन के विरुद्ध चीनियों का क्रोध अभी ठण्डा नहीं हुआ था कि अंग्रेज अफसरों ने भी अपनी मूर्खता और अदूरदर्शिता से स्थिति और भी खराब कर दी। पहली घटना ३० मई १९२५ को हुई थी। इसके ठीक २२ दिन बाद २२ जून को कैण्टन की शमीन बस्ती में फिर चीनी विद्यार्थियों की भीड़ पर मशीनगनों से अग्नि-वर्षा की गई। एक जलूस, जिस में लड़के, लड़-

स्त्रियां और स्काउट आदि सम्मिलित थे, ज्यों ही शमीन की पुल के पश्चिमीय किनारे पर पहुंचा, अंग्रेजों ने गोली चला दी। इसमें ५२ व्यक्ति मारे गये, जिन में अधिकांश विद्यार्थी थे। कुछ चीनी सिपाही और जलूस को देखने वाले नागरिक भी इस हत्याकाण्ड के शिकार हुए। बहुत से आदमी घायल भी हुए।

इस घटना के लिए ब्रिटिश अधिकारी ही मुख्यतया अपराधी थे। कैण्टन में ब्रिटिश माल के राजनैतिक बहिष्कार की घोषणा कर दी गई, कई महीने तक अंग्रेजों के निरन्तर प्रयत्न के बावजूद भी हांगकांग का व्यापार बन्द रहा। 'चायना एण्ड दी पावर्स' के अंग्रेज लेखक हेनरी कि० नार्टन के कथनानुसार चीनियों ने ब्रिटेन का इतना जबर्दस्त बहिष्कार किया कि अक्तूबर १९२६ तक, जब चीनियों से फिर समझौता हुआ, हांगकांग अपनी वह आर्थिक स्थिति प्राप्त नहीं कर सका, जो इस बहिष्कार से पहले थी। चीनी लोगों ने बन्दरगाह पर किसी भी प्रकार का — कुली, क्लर्की, व्यापार आदि का काम करने से इन्कार कर दिया। हिसाब लगाया गया है कि इस बहिष्कार के कारण हांगकांग को प्रति दिन ५ लाख डालर का नुकसान हुआ।

अभी तक भी ब्रिटेन के अभिमानी अधिकारी चीन की भावना को नहीं समझ पाये थे। यांगत्सी दरिया के किनारे बहुत से नाविक अपनी छोटी छोटी नौकाओं द्वारा अपना गुजारा करते थे। पर जब विदेशी शक्तियों ने इस नदी के मार्ग पर अधिकार कर लिया, तो इन नाविकों की रोज़ी मारी गई। विदेशी जहाजों

के कर्मचारी इन छोटी छोटी नाव वालों को खूब तंग करने लगे। सितम्बर १९२६ में एक जहाज वालों ने एक चीनी नौका डुबो दी, कुछ चीनी भी डूब गये। इसकी रिपोर्ट मिलने पर वान सीन के सेनापति ने ब्रिटेन के दो व्यापारिक जहाजों को गिरफ्तार कर लिया। यह घटना सुन कर अंग्रेजों के दो फौजी जहाज चढ़ दौड़े और चीनी सेना पर मशीनगनों से गोलियों की वर्षा कर दी। दोनों ओर से लड़ाई शुरू हो गई। इस युद्ध में करीब ८०० चीनी मारे गये। इससे चीन में अंग्रेजों के विरुद्ध असन्तोष और भी बढ़ गया।

मंचूरिया व ब्रिटेन

इसके बाद अंग्रेज चीनियों से सीधा संघर्ष बचाने की ही कोशिश करते रहे। जब चांग काई शेक के नेतृत्व में कुओ मिन ताँग की सेना हैंको और शांघाई पर कब्ज़ा करने के लिए पहुंची, तब भी ब्रिटिश अधिकारियों ने कोई कठोर कदम नहीं उठाया। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं था कि वे चीन के मित्र हो गये थे। वे वस्तुतः समझ गये थे कि अब चीन बदल चुका है। चीन के प्रति उन्होंने कभी सहानुभूति नहीं दिखाई। वे हमेशा जापान को बढ़ावा देते रहे, क्योंकि वे जापान से डरते थे। इंगलैंड के इसी रुख के कारण ही वस्तुतः जापान को यह साहस हुआ कि वह मंचूरिया पर आक्रमण करे। १९२७-२८ में रूस और इंग-लैंड के सम्बन्ध बहुत बिगड़ चुके थे। इसलिए ब्रिटेन रूस को

नीचा दिखाने के लिए पूर्व में जापान को बढ़ावा दे रहा था। रूस के मंगोलिया और बाहरी मंगोलिया पर बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने के लिए जापान का मंचूरिया पर अधिकार आवश्यक था। ब्रिटेन इस आक्रमण का विरोध न करेगा, यह आश्वासन जापान के लिए काफी था। उसने आक्रमण कर दिया।

राष्ट्रसङ्घ में भी जब चीनी प्रतिनिधि ने जापान के विरुद्ध अभियोग लगाये, तब ब्रिटेन ही था, जिस के कारण राष्ट्रसङ्घ कोई कदम न उठा सका। कई महीने यह प्रश्न टलता रहा। पर अन्त में विवश होकर सङ्घ ने लिटन कमीशन बिठाया। लिटन कमीशन की रिपोर्ट जापान के विरुद्ध जाती थी, पर फिर भी ब्रिटेन जापान का खुले शब्दों में विरोध नहीं कर सका। कमीशन की रिपोर्ट पर बहस का जो विवरण 'मैंचेस्टर गार्जियन' के संवाददाता ने भेजा था, उससे स्पष्ट है कि ब्रिटेन, इटली, जर्मनी आदि देशों की सहानुभूति निश्चित रूप से जापान के साथ थी। ब्रिटिश परराष्ट्र-मन्त्री सर जोन साइमन के बारे में तो उसने साफ लिखा था कि "उन्होंने लिटन कमीशन की रिपोर्ट से वे अंश चुन चुन कर प्रस्तुत किये, जो चीन के प्रतिकूल थे और जापान के विरुद्ध उन्होंने एक भी शब्द नहीं कहा। उनके भाषण में स्थान स्थान पर जापान की तारीफ की गई थी, पर चीन के पक्ष में आरम्भ से अन्त तक एक भी शब्द नहीं कहा गया।" अमेरिका ने जापान के विरुद्ध कोई सम्मिलित कदम उठाने की बहुत आवाज उठाई, लेकिन वहां ब्रिटेन के आगे वह आवाज दब सी गई। जापान

की केवल साधुतापूर्ण भर्त्सना करके राष्ट्रसङ्घ ने अपने उत्तरदायित्व और कर्तव्य की इतिश्री समझ ली। इसके बाद भी ब्रिटेन जापान का विरोध करने से संकोच करता रहा, लेकिन हम आगे देखेंगे कि ब्रिटेन ने जिसे राजमार्ग समझा था, वह उसके लिए अत्यन्त कण्टकाकीर्ण मार्ग निकला। उसने अनजाने में अपने ही भावी शत्रु को इतना अधिक प्रबल कर दिया था कि अब वही उसके लिये एक समस्या बन गई है।

चीनी तुर्किस्तान में षड्यन्त्र

ब्रिटेन केवल जापान को सहायता देकर ही सन्तुष्ट नहीं रहा, चीन के एक विस्तृत प्रदेश में भी वह चीन की सरकार के विरुद्ध षड्यन्त्र करता रहा। यह सिंकियांग अथवा चीनी तुर्किस्तान है और तिब्बत व साइबेरिया के बीच में है। इस प्रान्त के यारकन्द और काशगर नगरों को काश्मीर के श्रीनगर से लद्दाख के लेहनगर होकर कारवान नियमित रूप से जाते रहते हैं। यहां की जनसंख्या अधिकतर मुसलमान है। १९वीं सदी में ही ब्रिटेन और रूस की इस प्रान्त पर नजर पड़ी। रूस १८६८ तक ताशकन्द, कोहकन्द तथा समरकन्द ले चुका था। इधर १८४६ में काश्मीर जीतने के बाद ब्रिटेन की नजर ऊपर पड़ी थी। १८६९ में विदेशियों के बहकाने से इस प्रान्त ने चीन सरकार से विद्रोह कर दिया, लेकिन यह विद्रोह दबा दिया गया। बहुत समय तक चीन सरकार का इस पर कब्जा बना रहा। १९३१ में, जब

जापान मंचूको राज्य बनाने के लिये सैनिक पेशबन्दियां कर रहा था, ब्रिटेन ने तिब्बती सेना लेकर सिंकियांग के दक्षिणी-पूर्वी पड़ोसियों पर अर्थात् चिंघाई और ज़ेचुयान पर हमला कर दिया था। शांघाई की ब्रिटिश सेना भी सिंकियांग में मौजूद थी। इस के बाद दो साल तक चीनी तुर्किस्तान में मुसलमान छोटे-मोटे उपद्रव करते रहे। १९३२ में एकाएक विद्रोह ने भीषण रूप धारण कर लिया और कुछ समय बाद सूचना मिली कि चीनी तुर्किस्तान चीन से अलग हो रहा है। अभी तक भी इसका अन्तिम-निर्णय नहीं हो सका। इस विद्रोह में ब्रिटिश साम्राज्य-वादियों का पूरा हाथ रहा। ब्रिटिश कारखानों ने मुसलमान-विद्रोहियों को खूब हथियार भेजे। यह विद्रोह संगठित करने वाला भी एक अंग्रेज अफसर था। यह एक आश्चर्य की बात है कि इस विद्रोह में रूस का भी, जो ऊपर के भाग में अपना प्रभाव कायम करना चाहता है, काफी हाथ है।

ब्रिटेन व चीन के सम्बन्ध पर इतने विस्तार से लिखने का कारण यह है कि जापान के बाद ब्रिटेन ही चीन के लिये सब से अधिक भयंकर शत्रु सिद्ध हुआ है। ब्रिटेन ने न केवल स्वयं ही उसे लूटने खसोटने में अन्य राष्ट्रों का नेतृत्व किया, लेकिन जापान को समस्त चीन पर आक्रमण करने के लिए भी पूरी तौर पर उत्साहित किया। चीन की वर्तमान शोचनीय स्थिति के लिए ब्रिटेन भी कम जिम्मेवार नहीं है।

तेरहवां अध्याय

रूस व अमेरिका का चीन से सम्बन्ध

जापान और ब्रिटेन के बाद चीन से सब से अधिक सम्बन्ध रूस का रहा है। अन्य किसी यूरोपीय राष्ट्र की सीमा भी जापान से नहीं मिलती, लेकिन रूस तो हजारों मीलों के द्वारा उससे मिला हुआ है। इसलिए अन्य सब राष्ट्रों की अपेक्षा उसकी चीन में अधिक दिलचस्पी होनी अत्यन्त स्वाभाविक थी।

ब्रिटेन और रूस की प्रतिस्पर्धा तथा शत्रुता का जिक्र हम पहले कर चुके हैं। ब्रिटेन ने चीन के दक्षिणी भाग पर अधिकार करने की कोशिश की, तो रूस ने चीन के उत्तरी भाग पर नजर डाली थी। वस्तुतः रूस ही प्रथम यूरोपीय राष्ट्र था, जिसने सब

से पहले चीन से सन्धि की। १६८६ ई० में मंचूरिया और साइबीरिया की सीमा नियत करने तथा व्यापारिक सुविधाएं देने के लिए रूस व चीन में एक सन्धि हुई थी। इसके बाद १८४७ में पेकिंग में एक और महत्वपूर्ण सन्धि करके आमूर नदी से उत्तर तथा उम्रूरी के पूर्व के प्रदेश पर कोरिया की सीमा तक रूस ने अधिकार कर लिया। रूसी सरकार ट्रांस-साइबेरियन रेलवे बनाने का विचार कर रही थी कि उसे यह बात सूझी कि यदि रेलवे मंचूरिया से होकर बनाई जाय, तो ४०० मील कम लम्बी लाइन बनानी पड़ेगी, व्यय कम पड़ेगा, तथा लाभ अधिक होगा। और एक लाभ यह भी कि दक्षिण में प्रभाव बढ़ेगा। इसके लिये उसे कुछ सालों बाद अवसर भी मिल गया। १८९५ में जापान ने चीन से लियाओ तुंग छीन लिया था। रूस ने, जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, जापान को यह प्रदेश छोड़ने पर बाधित किया और इस उपकार के बदले चाइनीज़ ईस्टर्न रेलवे बनाने का अधिकार प्राप्त किया। इसके तीन साल बाद ही हार्बिन से पोर्ट आर्थर तक लाइन बनाने का अधिकार प्राप्त कर के रूस ने प्रशान्त महासागर के सारे साल भर चलने वाले एक बन्दरगाह पर अधिकार कर लिया और इस तरह महान पीटर का महान् स्वप्न पूरा हुआ। यह सब कथा दुहराने की यहां आवश्यकता नहीं। बाक्सर युद्ध के बाद सन्धि के समय उसने कैसे चीन से अनेक रियायतें प्राप्त कीं, कैसे उसका जापान से युद्ध हुआ और उसके बदले में दक्षिणी मंचूरिया से कैसे पीछे

हटना पड़ा, यह सब हम पहले बता चुके हैं। लेकिन इससे रूस निराश नहीं हुआ। उसने उर्गा और कालगान के रास्ते तिन्तसिन पर समुद्र तक पहुंचने की योजना बनाई। यह मंचूरिया से भी छोटा रास्ता था और पेकिंग के अधिक निकट पड़ता था। इसके लिए रूसी लोगों ने मंगोलिया को 'विद्रोह के लिए उभारना प्रारम्भ किया। मंगोलों को विदेशी मंचूवंश से मुक्त होने के लिए खूब उकसाया गया। विद्रोह के लिए धन जन की भी बहुत सहायता दी गई। जिन दिनों चीन में प्रजातन्त्र की महान् क्रान्ति हो रही थी और मंचू राजवंश गद्दी छोड़ रहा था, रूस के ज़ार ने उस परिस्थिति से नाजायज लाभ उठा कर मंगोलिया को स्वतन्त्र देश के रूप में स्वीकार कर लिया। इसके बाद रूस मंगोलिया में अपने लिए खास रियायतें लेने लगा। अभी मंगोलिया और रूस में बातें हो ही रही थीं कि १९१४ में यूरोप का महायुद्ध छिड़ गया। रूस को युद्ध में फंसना पड़ा और वह पूर्व में ध्यान न दे सका। जापान ने इससे लाभ उठा कर दक्षिणी मंचूरिया में अपने पैर और बढ़ा लिये, जिस के कारण रूस को चीनी-पूर्वी रेलवे के कुछ भाग पर से अधिकार छोड़ना पड़ा।

चीन से मित्रता

इसके बाद ही रूस की महान् क्रान्ति प्रारम्भ हो गई। इससे भी जापान ने लाभ उठाया। बोलशेविक क्रांति के विरुद्ध मित्र-राष्ट्रों की कार्रवाहियों से अपने को बचाने में रूस की नई सरकार

को व्यस्त रहना पड़ा और वह पूर्वीय एशिया की ओर बिलकुल भी ध्यान न दे सकी। साइबेरिया में मित्रराष्ट्रों की सेना १९२० तक पड़ी रही, लेकिन शीघ्र ही रूस की नई सरकार ने इस सेना पर ऐसा आक्रमण किया कि उसे पीछे भागना पड़ा। जनरल कोलचक मारे गये। मंगोलिया पर भी रूसी सेनाओं ने अधिकार कर लिया। मंगोलिया में सोवियट प्रजातन्त्र की घोषणा भी हो गई। इस तरह सैनिक युद्ध में विजय प्राप्त करके रूस ने चीन के राजनैतिक क्षेत्र में भी नये सिरे से प्रवेश किया। सब से पहला कदम उसने यह उठाया कि चीन सरकार उसे स्वीकार कर ले, लेकिन चीन सरकार अभी तक भी मित्रराष्ट्रों की अनुमति के बिना कुछ करने से डरती थी। रूस सरकार ने इन्हीं दिनों एक ऐसा काम किया, जिस से वह चीनी जनता की दृष्टि में बहुत ऊंची उठ गयी। उसने घोषणा की कि ज़ार के समय रूस ने चीन से जो जो विशेषाधिकार प्राप्त किये थे, उन सब को बोलशेविक सरकार अपनी इच्छा से छोड़ती है। मास्को और पेकिंग में बराबरी का दर्जा माना गया, ज़ार के समय अधिकृत चीनी प्रदेश भी छोड़ दिये गये, चीनी पूर्वी रेलवे भी बग़ैर मुआवज़ा लिये चीन को वापस कर दी गई, बाक्सर युद्ध की क्षतिपूर्ति की भारी रकम भी माफ कर दी गई, रूसियों के लिए रूसी अदालत में न्याय आदि के अधिकार भी छोड़ दिये गये तथा अन्य सब अन्याययुक्त संधियां, जो ज़ारशाही रूस ने चीन पर लादी थीं, रद्दी की टोकरी में फेंक दी गईं। वस्तुतः साम्राज्यवाद और साम्य-

वाद साथ साथ नहीं चल सकते। इसका एक और भी कारण था। सोवियट रूस ने पश्चिमीय शक्तियों से बराबर शोषित होने वाले पूर्वी देशों के प्रति जानबूझ कर उदारतापूर्ण नीति स्वीकार की थी। पं० जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में "यह सिर्फ सदाचार ही न था, बल्कि सोवियट रूस के लिए अच्छी और मुनासिब नीति भी थी, क्योंकि इस नीति ने पूर्व में उसके कई मित्र पैदा कर दिये।" विशेषाधिकार छोड़ने का प्रस्ताव बिना किसी शर्त के था। रूस ने इसके बदले कोई मांग नहीं की। इतने पर भी चीनी सरकार सोवियट सरकार से व्यवहार करने में डरती थी कि कहीं पश्चिमीय यूरोप की शक्तियां नाराज़ न हो जांय, लेकिन आखिरकार रूसी व चीनी प्रतिनिधि मिले और १६२४ में एक समझौता हो गया। फ्रांसीसी, अमेरिकन और जापानी सरकारों ने इस समझौते पर हस्ताक्षर न करने के लिए चीन सरकार पर दबाव डाला। उनके दबाव से चीन सरकार इतना डर गई कि उस ने किये हुये समझौते पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया। इस पर रूसी प्रतिनिधि ने समझौते का मसविदा अखबारों में छाप दिया। इससे बड़ी सनसनी फैल गई। "महाशक्तियों के सम्पर्क में पहली बार चीन के साथ आदर और सम्मान का व्यवहार किया गया था और उसके अधिकार स्वीकार किये गये थे। यह एक बड़ी शक्ति से उसकी पहली बराबरी की संधि थी।" चीनी जनता इससे खुश हुई, और उसने सरकार पर हस्ताक्षर करने के लिए इतना जोर डाला कि सरकार को झुकना पड़ा। सोवियट

सरकार ने डा० सनयात सेन की दक्षिणी चीन की सरकार से भी, जिस की राजधानी कैण्टन थी, बातचीत शुरू की और दोनों में एक समझौता हुआ। डा० सनयात सेन ने बोरोडिन आदि अनेक रूसी सलाहकार भी रखे। इस तरह रूस चीन का मित्र बन गया।

स्वार्थों की चिन्ता

रूस चाहे साम्राज्यवादी हो या साम्यवादी, पूर्व में अपने स्वार्थों की ओर से बिलकुल उदासीन नहीं हो सकता था। जापान की अब भी रूस पर नजर थी और रूस भी इससे अनभिज्ञ न था। इस लिए उसने चीन से मित्रता सम्पादन करके अपने हितों की चिंता प्रारम्भ की। चीनी पूर्वी रेलवे के प्रबन्ध व संचालन पर अपना अधिकार बनाये रखने के लिए उसने नई योजना पेश की कि इसका प्रबन्ध चीन और रूस दोनों मिल कर करें। प्रबन्ध के लिए ५ चीनियों और ५ रूसियों की एक संयुक्त कमेटी हो, लेकिन उसका मैनेजर व एक सहायक मैनेजर अवश्य रूसी हो। इस तरह रूस ने अपना स्वार्थसाधन मज़े में कर लिया।

इन्हीं दिनों दक्षिणी चीन में भी सलाहकारों के रूप में रूसियों ने अपना प्रभाव बहुत अधिक बढ़ा लिया। बोरोडिन व उसके अन्य सहायक चीन की आन्तरिक राजनीति में काफी ज्यादा भाग ले रहे थे। उनके सामने साम्यवाद, जन-सेवा आदि

बड़े-बड़े आदर्श थे और इन्हीं आदर्शों का प्रचार उन्होंने वहां किया, लेकिन इन सब की तह में जापान के विरुद्ध चीन को अपने प्रभाव-क्षेत्र में लाने की आकांक्षा भी गुप्तरूप से बढ़ रही थी। कैंटन में चीनी किसानों की होने वाली बड़ी कान्फ्रेंस में जो मोटो बांटे गये थे, रूस के सरकारी पत्र 'इज़वस्ता' के अनुसार उनमें से कुछ निम्नलिखित थे:—

"किसानो! इन्टरनेशनल सोवियट के झण्डे तले एकत्र हो जाओ।"

"हथियार बांध लो और आत्मरक्षा के लिये आम पंचायतें बना लो।"

"किसानों का शोषण खतम हो।"

"साम्राज्यवादी मिशनरियों और गिरजों से परे रहो।"

"चीनी किसानो! एक हो जाओ।"

यह केवल सिद्धान्तों का प्रचारमात्र न था, यह चीन की जनता के अन्तस्तल में घुस कर उस पर अधिकार करने का एक प्रयत्न भी था। रूसियों का प्रभाव चीन में इतना अधिक बढ़ गया था कि उनकी वजह से कुओ मिन तांग में फूट पड़ गई। जब चांग काई शेक ने शांघाई और पेकिंग के विजय के लिए यात्रा की थी, तब कुओ मिन तांग में साम्यवादी विचारों का प्रचार इतनी तेजी से किया जाने लगा था कि चीन को एक झण्डे तले लाने की अपेक्षा साम्यवादी पद्धति को अधिक महत्व दिया गया, राष्ट्रीयता पर साम्यवाद को अधिक तरजीह दी गई।

इसका फल यह हुआ कि कुओ मिन तांग में फूट पड़ गई और चांग काई शेक को नानकिंग में अलग सरकार बनानी पड़ी। चीनी साम्यवादी नेताओं ने इस आवश्यक तत्व का ध्यान नहीं रखा और कैंटन की सरकार के अलावा भी पश्चिमीय और मध्य चीन में साम्यवादी सरकारें कायम कर ली गईं। इन पर रूस का बहुत बड़ा प्रभाव था और वस्तुतः उसी की सहायता से ये इतनी ताकत पकड़ गई थीं। इसमें सन्देह नहीं कि यह साम्यवादी सरकारें चीन की उन्नति चाहती थीं और नानकिंग सरकार की नरम नीति से असन्तुष्ट होकर ही ये अपनी पृथक् सरकारें कायम कर रही थीं। इन्होंने अपने राज्य में प्रबन्ध भी बहुत सुन्दर किया था। शनैः शनैः इनका बल भी बहुत बढ़ गया था। १६३२ के मध्य तक चीन का छठा भाग उसमें शामिल हो गया। इसका विस्तार २,५०,००० वर्ग मील और जनसंख्या ५ करोड़ हो गई। यह करीब करीब संयुक्तप्रान्त, दिल्ली, पंजाब और सीमाप्रान्त के इलाके के बराबर है अर्थात् बनारस से पेशावर तक इसका विस्तार हो सकता है। इस सोवियट राज्य के दमन के लिए चांग काई शेक ने भी जिन साधनों का प्रयोग किया, उन की कभी प्रशंसा नहीं की जा सकती। उसने इसके लिए अनेक बार चीन के परम शत्रु जापान तक से सहायता ली।

मंगोलियनों को चीन के विरुद्ध भड़का कर रूस वहां कठपुतली स्वतन्त्र सरकार कायम कर ही चुका था। यह सरकार वस्तुतः ठीक वैसी ही कठपुतली सरकार थी, जैसी कि कुछ साल

पीछे जापान ने मंचूरिया में कायम की थी। मि० शिशरिन ने मंगोलिया के बारे में कहा था कि "हम मंगोलिया को चीन के प्रजातन्त्र का एक भाग समझते हैं, लेकिन हम इसके साथ साथ ही उसकी स्वतन्त्रता भी स्वीकार करते हैं और वह अपनी स्वतन्त्र परराष्ट्र नीति निर्धारित कर सकता है।" वस्तुतः रूस की नीति दोधारी थी। न वह अपने ऊंचे सिद्धान्तों को छोड़ना चाहता था और न अपने भौतिक स्वार्थ को।

चीनी पूर्वी रेलवे के बारे में भी रूस ने जहां नानकिंग सरकार से सन्धि की थी, वहां उसने मंचूरिया के प्रान्तीय शासक चांग सो लिन को "तीन प्रान्तों का स्वतन्त्र शासक" मान कर उससे भी सन्धि की थी। यह नानकिंग सरकार से खुला विद्रोह था। चीनी तुर्किस्तान में भी रूस की सोवियट सरकार अंग्रेजों के मुकाबले में कुछ साजिशें कर रही थीं। वस्तुतः साम्यवादी रूस सरकार चीन के मामलों में पूरी दिलचस्पी ले रही थी। अन्य राष्ट्रों की भांति चीन के हितों की अपेक्षा अपने हित ही वह भी सर्वोपरि समझती थी, सिर्फ अन्तर था तरीकों में। मि० नार्टन लिखते हैं कि:—"साधन भिन्न थे, तरीके भिन्न थे, लेकिन उद्देश्य वही था, जो पुरानी सरकार का था — अर्थात् चीन के अन्तस्तल में प्रवेश कर समुद्री बन्दरगाह पर अधिकार करना। ...... रूस चाहे कोई टोपी पहन ले, ज़ारशाही हो या बोलशेविक, कैडिक हो या मेनशेविक, रूसी रीछ पीले समुद्र के आरोग्यवर्धक जल में स्नान करने के लिए पूर्ण उत्सुक है।"

रूस की इस नीति का परिणाम उलटा पड़ना स्वाभाविक था। १६२७ के दिसम्बर में नानकिंग सरकार व सोवियट रूस में सम्बन्ध टूट गए। इन्हीं दिनों पेकिंग के दूतावास में ऐसे बहुत से कागजात मिले, जिनसे चीन में मजदूर राज्य स्थापित करने के षडयन्त्र का भण्डाफोड़ होता था। साम्राज्यवादी राष्ट्रों ने चांग काई शेक को और भी भड़काया। १६२६ में चीनी पूर्वी रेलवे के रूसी मैनेजर ने चीन की एक सेना को रेलवे में ले जाने से इनकार कर दिया। मंचूरिया के शासक चांग सो लिन ने रूसी मैनेजर को गिरफ्तार कर लिया। रूस ने उसे ४८ घन्टे में रिहाई करने की मांग के साथ फौजों की भी धमकी दी। कुछ महीनों तक एक तरह का जंग रहा और अन्त में चीन को दबना पड़ा। रेलवे पर रूस का अधिकार और भी मजबूत हो गया।

आज तक भी रूस को हम चीन के पूर्ण सहायक और समर्थक के रूप में नहीं पाते। वह चीन में जापान की वृद्धि नहीं देख सकता, पर जापान के विरुद्ध चीन को प्रत्यक्ष सहायता न देकर वह अपनी स्थिति मजबूत करने में लगा हुआ है। अब वह मंगोलिया पर भी अपना प्रभुत्व बढ़ाने का प्रयत्न कर रहा है। पिछले फरवरी मास में ही खबर मिली थी कि चीन को जापान से लड़ाई में व्यस्त देख कर वह कान्सू आदि प्रान्तों में अपना प्रभाव बढ़ाने की कोशिश कर रहा है। परन्तु दूसरी ओर वह शस्त्रास्त्र आदि द्वारा चीन की सहायता भी कर रहा है।

वस्तुतः वर्तमान सम्बन्ध के बारे में अभी निश्चित रूप से सम्मति बनाना समय से पूर्व होगा।

संयुक्तराष्ट्र अमेरिका

जापान, ब्रिटेन और रूस के बाद अमेरिका चीन के सम्बन्ध में बहुत ज्यादा दिलचस्पी रखता है। १८६५ ई० से पूर्व तक अमेरिका गृहयुद्ध व व्यावसायिक उन्नति आदि अपनी ही अनेक समस्याओं में व्यग्र रहा। १८६८ ई० में फिलिपाइन विजय के बाद उसकी दिलचस्पी पूर्व की ओर बढ़ने लगी। अन्य राष्ट्रों की देखा-देखी उसने भी अपनी पूंजी का प्रवाह चीन की ओर किया। १६२८ ई० तक चीन सरकार के बौंड व सैक्योरिटियों में अमेरिकन धनियों के २ करोड़ डालर लगे हुए थे। रेलवे, बैंक तथा अपने और चीनियों के व्यवसायों में जो रकमें लगी थीं, वह भी कम न थीं। चीन के व्यापारिक कार्यों में कुल अमेरिकन पूंजी ७ करोड़ डालर से कम न थी। परन्तु इसके अलावा भी मिशनों, हस्पतालों, स्कूलों तथा अन्य धार्मिक, सामाजिक व सांस्कृतिक संस्थाओं में भी अमेरिकन नागरिकों का जो रुपया लगा था, वह भी ७ करोड़ डालर से कम न था। कई बढ़िया २ कालेज और यूनिवर्सिटियां अमेरिकन रुपये से ही चल रही थीं, जिनके संचालक प्रायः अमेरिकन पादरी हैं। इन्हीं संस्थाओं की वजह से ही अमेरिकन जनता चीन में अधिक दिलचस्पी लेने लगी थी। अमेरिकन पादरी सारे चीन में फैल गये थे और पादरियों की

वजह से चीन का जो नुकसान हुआ, उसमें अमेरिकन पादरियों का भी कम भाग न था। यह ठीक है कि अमेरिका ने कभी इनकी वजह से चीन के किसी प्रदेश पर अधिकार नहीं किया, लेकिन यह भी सच है कि जब कभी अन्य राष्ट्रों ने चीन से तटकर आदि के बारे में कुछ विशेषाधिकार लेने चाहे, अमेरिका भी इस लूट में उनके साथ शामिल हो गया। अमेरिका ने चीन के साथ "सब से अधिक कृपापात्र देश" की संधि कर रखी थी। सभी अवसरों पर यही धारा दुहराई जाती थी।

साधारणतया अमेरिका की नीति चीन के लिए अच्छी रही। उसने न स्वयं किसी देश पर अधिकार किया और न किसी दूसरे को इसमें सहायता दी। अनेक अवसरों पर वह अन्य राष्ट्रों की प्रगति में थोड़ा-बहुत बाधक ज़रूर हुआ। जब १८६८ में रूस, जापान ब्रिटेन, फ्रांस और जर्मनी ने चीन में लूट खसोट मचाई, तब अमेरिका ने यह सोच कर कि कहीं उसका व्यापार नष्ट न हो जाय, मुक्तद्वार वाणिज्य की नीति पर जोर दिया। १९१५ ई० में जब जापान ने चीन के सामने २१ शर्तें पेश की थीं, तब भी अमेरिका ने विरोध किया। वर्सेलीज़ कांफ्रेंस में भी अमेरिकन प्रतिनिधियों ने चीन का समर्थन किया। लेकिन इस समर्थन का कोई वास्तविक फल न निकला। हां, वाशिंगटन कांफ्रेंस में उसे कुछ सफलता जरूर हुई। राष्ट्रों ने चीन की स्वतन्त्रता और अखण्डता के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया। इसी कांफ्रेंस के फलस्वरूप १९२५ में तटकरों तथा अन्य राष्ट्रों

के विशेषाधिकारों पर विचार करने के लिये एक कांफ्रेंस बैठी। इस कांफ्रेंस में यह निश्चय किया गया कि १९२९ तक चीन तटकरों के सम्बन्ध में स्वतन्त्र हो जायगा। लेकिन दरअसल अमेरिका की यह ज़बानी हमदर्दी थी। जब १९२५ में अन्तर्दैशिक अधिकारों का प्रश्न पेश हुआ, तब ब्रिटेन आदि राष्ट्रों के साथ अमेरिका ने भी कहा कि अभी चीन का कानून इतना प्रभावशाली नहीं है कि हम अपने नागरिक उसके हवाले करदें। १९२९ में भी ब्रिटेन और अमेरिका का यही रुख रहा। १९३०-३१ में भी अपने पूर्ण अन्तर्दैशिक अधिकार छोड़ने के लिए ये दोनों देश राज़ी न हुए, तब विवश होकर चीन को घोषणा करनी पड़ी कि १९३१ के प्रारम्भ से चीन में विदेशी अदालतें बन्द कर दी जायेंगी। इस से सब राष्ट्रों में एकदम सनसनी फैल गई, लेकिन इन्हीं दिनों जापान ने मंचूरिया पर आक्रमण कर दिया और यह महत्वपूर्ण प्रश्न फिर खटाई में पड़ गया। तटकरों के सम्बन्ध में १९३० में सब राष्ट्रों ने एक चीन से नई सन्धि कर ली या उन्हें चीन की बात मानने के लिए विवश होना पड़ा।

फ्रांस की नीति भी प्रायः वही रही, जो ब्रिटेन की थी, लेकिन युद्ध के बाद से वह पूर्वीय एशिया के प्रश्नों में कम दिलचस्पी लेने लगा था। २७ दिसम्बर सन् १९२८ को फ्रांस ने भी तटकरों के बारे में चीन से नई सन्धि करके चीन की तटकर-स्वतन्त्रता को स्वीकार कर लिया था। जर्मनी का तो युद्ध के बाद से चीन में कोई स्थान ही न रहा था। पहली सब सन्धियां

स्वयं ही मन्सूख हो चुकी थीं। अनेक अन्य राष्ट्रों ने भी इसी तरह की सन्धि कर ली। बेलजियम, डेनमार्क, इटली, पुर्तगाल और स्पेन ने १ जनवरी सन १६३० को अपने अन्तर्देशिकता के अधिकार छोड़ने का भी वायदा किया, लेकिन अभी तक भी बहुत से राष्ट्रों को ये अधिकार प्राप्त हैं और जब तक इन्हें नष्ट नहीं किया जाता, ये चीन की सर्वांगीण उन्नति में बाधक बने रहेंगे।

इस तरह हमने देखा कि केवल जापान ही नहीं, ब्रिटेन और रूस आदि अन्य राष्ट्र भी चीन के लिए काफ़ी बड़ी समस्यायें हैं। चीन कहने को तो स्वतन्त्र है, उसकी अपनी सरकार है, अपनी राष्ट्रीय सेना है, संसार के विभिन्न देशों में उसके अपने राजदूत हैं, मतलब यह है कि स्वतन्त्र राष्ट्रों के पास जो कुछ होता है, वह सब उसके पास है, लेकिन यह सब होते हुए भी वस्तुतः वह स्वतन्त्र नहीं है। तिन्तसिन, शांघाई और हांगकांग आदि उसके समुद्रतट के प्रमुख शहर, पेकिंग जैसे अन्तरीय देश के प्रमुख शहर विदेशी नियन्त्रण में हैं। इन स्थानों पर विदेशी दूतावास विदेशियों की सेना के दुर्ग हैं। उनके पास अपने सामुद्रिक जंगी जहाज हैं और हवाई सेना भी है। चीन की बड़ी नदियां तक दूसरे राष्ट्रों के कब्जे में हैं। केवल व्यापारिक जहाज ही नहीं, दूसरे देशों के झण्डे लगाये हुए जंगी जहाज यांग्त्सी आदि नदियों द्वारा चीन के अन्दर १५०० मील तक बेरोकटोक जाते रहते हैं। चीन की बहुत सी बेशकीमती खानें तक चीन के हाथ में नहीं

है। चीनप्रवासी विदेशियों पर चीन का कानून तक लागू नहीं होता। इससे भी बुरी बात यह है कि विदेशी पूंजी ने चीन को बिलकुल अन्य राष्ट्रों के प्रभुत्व में फंसाकर विवश और साधन-हीन कर दिया है। १६३६ तक चीन में लगी हुई ब्रिटिश पूंजी ४ अरब रुपया और जापान की पूंजी ३ अरब रुपया थी। अन्य राष्ट्रों ने भी निजी कल कारखानों व सरकारी तौर पर करोड़ों रुपया लगा रखा है। इस तरह से जापान उत्तर में, ग्रेट ब्रिटेन व फ्रान्स, जेचुआन व यूनान के दक्षिणी प्रान्तों में तथा अमेरिका केन्द्र में नानकिंग सरकार की आन्तरिक राजनीति का अपने कर्ज द्वारा सूत्र संचालन करते रहे हैं। वस्तुतः राजनैतिक व आर्थिक किसी दृष्टि से चीन स्वतन्त्र नहीं है। सभी राष्ट्र चीन को अपनी स्वार्थ-सिद्धि का साधन बनाना चाहते हैं। कोई देश दूसरे की सहायता से न उठा है और न उठ सकता है। चीन को भी अपने पैरों खड़ा होना है और देखने वाले कहते हैं कि वह कुछ ही सालों में विदेशियों के सब बन्धन काट भी फैंकेगा।

चौदहवाँ अध्याय

लालचीन का आत्मसमर्पण

अमेरिका की एक प्रसिद्ध बीमाकम्पनी के डायरेक्टर ने अपनी रिपोर्ट में लिखा था कि जापानी तुरन्त जान बीमा करा लेते हैं। जोश में आकर वे तुरन्त काम कर बैठते हैं, पर पीछे वे पलट भी जाते हैं और पालिसी डूब जाती है। पर, चीनी बहुत सोच समझ कर जान-बीमा करावेगा, हां यदि करा लेगा, तो जीवन भर निबाहेगा। यही भावुकता — शीघ्रता जापान के अभ्युदय की शीघ्रता का कारण है और यही दीर्घसूत्रता चीनी विकास की मन्दगति का कारण है। चीनी और जापानी के इस स्वभाव और राष्ट्रीय चरित्र भेद ने दोनों देशों के इतिहास पर

बहुत अधिक प्रभाव डाला है। प्राचीनकाल में राजनैतिक शक्ति को चीनी महत्व नहीं देते थे, उनकी विशाल सभ्यता संस्कृति पर निर्भर थी और वह जीवन यात्रा की कला अपने ही ढंग से सिखाती थी। वे अपनी इस पुरानी संस्कृति में इतने डूबे हुए थे कि जब उनका राजनैतिक और आर्थिक ढांचा बिखरा, तब भी वे अपनी पुरानी संस्कृति के रस्म रिवाजों से चिपटे रहे। जापान ने जानबूझ कर पश्चिमी रंग ढंग अख्तियार किया और फिर भी वह दिल से साम्यवादी था। चीन साम्यवादी नहीं था, वह बुद्धि-वाद और वैज्ञानिक भावना से परिपूर्ण था। विज्ञान और व्यवसाय में पश्चिम की उन्नति को वह बहुत कौतूहल से देख रहा था, फिर भी वह उधर जापान की अपेक्षा बहुत कम झुका, यद्यपि उद्योगधन्धों के लिए उसे सब प्रकार की सुविधाएं प्राप्त थीं। चीन के हृदय में एक संकोच भी था और वह पुराणी संस्कृति से सम्बन्ध तोड़ने वाली कोई बात नहीं करना चाहता था। भारतीयों की तरह से चीन भी दार्शनिक विचारक था और दार्शनिक एकाएक निर्णय नहीं कर सकता। वह सोचने विचारने में बहुत समय लगाता है। चीन में यद्यपि प्रजातन्त्र की स्थापना हो चुकी थी, यद्यपि वह औद्योगिक और व्यावसायिक दिशा की ओर भी काफ़ी बढ़ चुका था, यद्यपि विदेशियों और विशेषकर जापान के आक्रमण ने बुरी तरह झकझोर कर उसे चैतन्य कर दिया था, फिर भी वह अभी तक अपने दार्शनिक स्वभाव के कारण अन्तिमरूप से शायद कुछ निश्चय नहीं कर सका था।

अभी तक भी वहां सरकार कैसी हो, यह निर्णय न हो सका था और इसी मतभेद के कारण वह विदेशियों के विरुद्ध एक न हो सका था। उसे एक जबर्दस्त ठोकर लगनी जरूर थी, जो उसे पूर्णरूप से चेतन कर दे। जापान की आक्रमण नीति ने इस अभाव को पूरा कर दिया।

गृहकलह

जब जापान ने मंचूरिया पर आक्रमण करके उसे हस्तगत कर लिया या जेहोल पर कब्जा करके उसे अपने नये कठपुतली राज्य मंचूको में मिला लिया, तब भी चीन में पारस्परिक गृहकलह मचा हुआ था। हम पिछले अध्याय में कह आये हैं कि रूस के प्रभाव में आने से साम्यवादी नेताओं ने पश्चिमीय और मध्य चीन में चीन की केन्द्रीय सरकार से पृथक् कम्यूनिस्ट सरकार कायम करली थी। शनैः शनैः इस नई सरकार का बल बहुत बढ़ गया था। जब जापान चीन में उपर्युक्त काण्ड कर रहा था, चांग काई शेक की राष्ट्रीय सरकार और इन कम्यूनिस्टों में भारी संघर्ष चल रहा था, कुओ मिन तांग के पास शासनसत्ता, शिक्षा, युद्ध सामग्री और आर्थिक साधन थे, तो कम्यूनिस्ट सरकार के पास उत्साह, साहस और अपने नवीन आदर्शों के लिये लगन की कमी न थी। यदि किसी तरह इन दोनों दलों का सहयोग उस समय हो जाता, तो शायद चीन का अर्वाचीन इतिहास भिन्न होता, लेकिन अभी तक चीन कुछ निर्णय न कर सका था।

१९३० तक केन्द्रीय सरकार उत्तरी चीन के झगड़ों से निवृत्त न हो सकी थी और जो सेनायें कम्यूनिस्टों का दमन करने गई भी थीं, असफल होकर लौटी थीं। १९३१ फरवरी में युद्धमन्त्री हो पिंग चिन एक विशाल सैन्य लेकर कम्यूनिस्टों का दमन करने के लिए पूर्व की ओर रवाना हुआ, लेकिन सोवियट प्रजातन्त्र की प्राकृतिक कठिनताओं, यातायात के मार्गों के अभाव, कम्यूनिस्टों के गुरिल्ला-युद्ध तथा जनता के असहयोग के कारण उसे भी असफल होकर वापस आना पड़ा। जून में स्वयं चाँग काई शेक उधर रवाना हुये, लेकिन उन्हें भी कामयाबी न हुई। यही दिन थे, जब जापान मंचूरिया पर हमला कर रहा था। १९३३ में चांग काई शेक ने बड़ी भारी तैयारी के साथ कम्यूनिस्टों पर फिर आक्रमण किया और उन्हें फिर कियांगसी में खदेड़ दिया, लेकिन प्रान्तीय और केन्द्रीय सरकारों में पारस्परिक सहयोग न होने के कारण बहुत सी कम्यूनिस्ट सेनायें कुइचाउ, यूनान और ज़ेचुआन की ओर चली गईं। ज़ेचुआन की प्रजा अपने प्रान्तीय शासक के अत्याचारों से बहुत तंग थी। इसका लाभ उठा कर एक कम्यूनिस्ट सेनापति ने वहां विद्रोह करा दिया और शीघ्र ही कम्यूनिस्ट शासन कायम कर लिया। इधर नानकिंग की फौजों ने आखिरी लड़ाई की तय्यारी शुरू की, लेकिन फूकीन में अकस्मात् विद्रोह हो जाने के कारण चांग काई शेक को अपनी समस्त शक्ति उधर लगा देनी पड़ी। नवम्बर १९३४ में उसे कियांगसी की लाल सेना का दमन करने में सफलता प्राप्त हुई, लेकिन यह सफलता

स्थायी न थी। लाल सेना ने फिर आक्रमण किया और हारा हुआ प्रदेश फिर ले लिया। १९३५–३६ में चांग काई शेक ने फिर एक बड़ी भारी सेना भेजी। लाल सेनाओं को ज़ेचुआन-तिब्बत सीमा के पहाड़ी प्रदेश में भागना पड़ा। वहां से भी वे भाग कर शैंसी और कांगसू के उत्तर में चली गईं, क्योंकि उन्हें आशा थी कि वे सिनकियांग के द्वारा सोवियट रूस से सहायता प्राप्त कर सकेंगी।

यह गृहयुद्ध अभी और भी जारी रहता, यदि जापान का बढ़ता हुआ खतरा चीनियों को एक होने के लिए तय्यार न कर देता और राष्ट्रीय तथा कम्यूनिस्ट सरकारें एक दूसरे से मिल न जातीं। ये दोनों दल किस तरह एक हुए, इसकी भी बड़ी मनोरंजक कहानी है। १९३६ के प्रारम्भ में उत्तरी चीन के कम्यूनिस्टों का दमन करने के लिए चांग काई शेक ने जनरल चांग सुइ-लियांग के नेतृत्व में मंचूरियन सेना भेजी, किन्तु मंचूरियन सेना लाल सेनाओं के साथ मिल गई। नानकिंग के अन्य भी अनेक सैनिक अधिकारी इस समय लाल सेना का साथ दे रहे थे। यह देखकर चांग काई शेक दिसम्बर १९३६ में स्वयं सियान पहुंचे, लेकिन वहां कम्यूनिस्टों के हाथ बन्दी हो गये। इस समय श्रीमती चांग काई शेक हवाई जहाज द्वारा वहां पहुंचीं। वे अत्यन्त बुद्धिमती, योग्य, वीर तथा राजनीतिज्ञ हैं। चांग काई शेक की उन्नति और चीन के प्रकर्ष में उनका बड़ा भारी हाथ है। उन्होंने वहां जाकर कम्यूनिस्ट नेताओं से बातचीत की। चांग काई शेक

और कम्यूनिस्ट नेताओं ने चीन के बारे में अपना अपना पक्ष पेश किया। चीन की आर्थिक, राजनैतिक व सामाजिक सभी चर्चाओं पर विस्तार से विचार हुआ। कम्यूनिस्ट नेताओं ने कहा कि जापान चीन के लिए बड़ा भारी खतरनाक सिद्ध हो रहा है, उस के विरुद्ध राष्ट्रीय सरकार बहुत उदासीन है। उधर चांग काई शेक ने कहा कि जापान जैसे सम्पन्न और शक्तिशाली राष्ट्र से युद्ध करने के पूर्व समस्त चीन का एक हो जाना आवश्यक है। दोनों पक्षों ने एक दूसरे के दृष्टिकोण को अच्छी तरह समझने का प्रयत्न किया। वस्तुतः दोनों पक्ष जापान की बढ़ती हुई शक्ति का अनुभव कर रहे थे और यही भय था, जिस ने दोनों को मिला दिया। इस समझौते के अनुसार चांग काई शेक ने कम्यूनिस्टों को विश्वास दिलाया कि साधारण जनता—किसानों व मजदूरों का शोषण रोकने के सभी उपाय बरते जायेंगे और जापान का मुकाबला तीव्रता से किया जायगा। इसके बदले कम्यूनिस्टों ने अपने परम शत्रु चांग काई शेक की सरकार का नेतृत्व स्वीकार कर लिया।

आत्मसमर्पण या आत्मत्याग

कम्यूनिस्ट राज्य ने अपना सारा विधान बदल दिया। पहले जमींदारों व अमीरों को मत देने का अधिकार प्राप्त न था, अब उन्हें भी मत देने का अधिकार मिल गया। विधान के अनुसार यद्यपि गवर्नर की चुनी हुई असेम्बली चुन सकती है, तथापि नानकिंग

सरकार की अनुमति लेनी भी आवश्यक हो गई। इस राज्य का नाम तक बदल दिया गया। पहले इसका नाम "सोवियट रिपब्लिक आफ़ चायना" था, लेकिन अब नया नाम रखा गया—शेंसी, कानसू, और निंगसिया के सीमान्त ज़िले (The Boardering Districts of Shensi, Kansu, and Ningsia) लाल सेना में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन किये गये। उनकी पोशाक तक बदल दी गई। लाल तारे के बजाय कुओ मिन तांग की टोपी सब सैनिकों के सिरों पर दीखने लगी। नानकिंग सरकार की ओर से सैनिक वर्दियां मिलने का निश्चय हुआ। इसका नाम भी लाल सेना से बदल कर 'आठवीं कूच की सेना' रख दिया गया। पोशाक और नाम के साथ लाल झण्डा भी चला गया। 'रैड चायना' नामक अखबार ने भी अपना नाम बदल कर 'न्यू चायना' कर दिया। रैड अकैडेमी ने भी अपना नाम "जापान-विरोधी सैनिक व राजनैतिक एकैडेमी" रखा। सोवियट रूस की तरह चीन के सोवियट प्रजातन्त्र में भी ओगपू (जासूस-सेना) थी, उसका नाम बदल कर पाओ अन तुह (शान्तिरक्षक दल) रखा गया।

कम्यूनिस्ट पार्टी ने अपने कार्यक्रम में भी परिवर्तन करके कुओ मिन तांग के सहयोग से निम्नलिखित कार्यक्रम अपनाया—

१—जापान से संग्राम करके चीन में से साम्राज्यवाद को उखाड़ डालना।

२—जापान से सब राजनैतिक सम्बन्ध समाप्त करके नानकिंग सरकार से समझौते का रुख धारण करना।

३—समस्त राष्ट्र की सेनाओं को जापान के विरुद्ध संचालित करना।

४—समस्त देश की जनता को जापानविरोधी संघर्ष के लिए उद्यत करना और जनता में देशभक्ति के भाव पैदा कर उन्हें शस्त्रधारण करने की स्वतन्त्रता देना।

५—सब पार्टियों की एक संयुक्त सरकार बनाना तथा जापानी साम्राज्यवाद या अन्य देशविद्रोही शक्तियों को चीन से बाहर निकाल देना।

६—रूस, इंगलैंड आदि से जापानविरोधी समझौता करना।

७—जापानविरोधी आर्थिक नीति, जापानी साम्राज्यवाद की सम्पत्ति की जब्ती, स्वदेशी की वृद्धि और जापानी माल का बहिष्कार।

८—जनता के रहन-सहन को ऊंचा करना, बहुत से अनुचित टैक्स हटाना और मालगुजारी आदि कम करना।

९—जापानविरोधी राष्ट्रीय सैनिक शिक्षा।

१०—कुओ मिन तांग व कम्यूनिस्ट दो पार्टियों के एकीकरण द्वारा जापान के विरुद्ध समस्त देश का सम्मिलित मोर्चा।

लाल सेना की कौंसिल के चेयरमैन माओ सि तुंग ने एक पत्र-प्रतिनिधि से इस कार्यक्रम की व्याख्या करते हुए कहा था—"जापान से संघर्ष का यह हमारा महान् प्रयत्न है। यदि हम इस

कार्यक्रम पर चल सके, तो हम जापानी साम्राज्यवाद को खतम कर देंगे। यदि न चल सके तो चीन नष्ट हो जायगा।"

सोवियट प्रजातन्त्र और नानकिंग सरकार के समझौते से पिछले दस वर्षों से चला आने वाला महान् और भीषण गृहयुद्ध समाप्त हो गया। कहते हैं कि मानवसमाज के इतिहास में इतना भीषण वर्गयुद्ध और कभी नहीं हुआ। इन दस वर्षों में इस युद्ध के कारण करीब दस लाख आदमी मर गये। यह समझौता होने से चीन का महान् राष्ट्र एक हो गया। चांग काई शेक का नाम इस महान् सफलता के लिए स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा।

इधर यह समझौता हो रहा था और उधर जापान के राजनीतिज्ञ इस गृहयुद्ध के अन्त को बहुत सूक्ष्मता, सतर्कता और भय से देख रहे थे। उन्होंने देखा कि इस समझौते का अर्थ है जापान की उन महत्वाकांक्षाओं का अन्त, जो बैरन टनाका की योजना में प्रकट की गई थीं। बहुत समय से जापानी जनता को जिन स्वप्नों और जिन मृग-मरीचिकाओं के भुलावे दिये जा रहे थे, वे टूटने वाली थीं। अभी चीनियों के नये संयुक्त कार्यक्रम पर अन्तिम रूप से हस्ताक्षर नहीं हुये थे। इसलिये इसी समय--दोनों के संयुक्त होने से पहले ही जापान ने आक्रमण का निश्चय कर लिया। निश्चय हो चुका, तब बहाना मिलने में क्या देर थी? लेकिन नये युद्ध का वर्णन करने से पूर्व जापान की पिछले दो तीन सालों की प्रगति पर एक दृष्टि डाल लें।

पन्द्रहवाँ अध्याय

ब्रिटेन को जापान का चकमा

पिछले अध्यायों में हम यह देख चुके हैं कि किस तरह चीन के मैदान में जापान तेजी से बढ़ रहा था। कोई ऐसा प्रतिस्पर्धी राष्ट्र न था, जो उसकी प्रगति को रोकता। लेकिन हम यह भी बता चुके हैं कि ब्रिटेन की उसे गुप्त रूप से सहायता प्राप्त हो रही थी। ब्रिटेन को आशा थी कि जापान उसके हितों और स्वार्थों को कोई नुकसान नहीं पहुंचायगा, लेकिन गुरु गुड़ रह गये, चेला चीनी हो गये। जापान अब इतना अधिक शक्ति-सम्पन्न हो चुका था कि उसे ब्रिटेन से डरने की जरूरत नहीं थी। उसने उस ब्रिटेन को भी अंगूठा दिखा दिया, जिसकी सहायता से

ही उसे चीन में मज़े लूटने का मौका मिला था। १९३३ में उस ने राष्ट्रसंघ छोड़ दिया, अप्रैल १९३४ में जापान के युद्ध विभाग की एक सरकारी घोषणा में कहा गया था कि "नौ राष्ट्रों की सन्धि मर चुकी है। यूरोप के राष्ट्रों तथा अमेरिका को, जो पूर्वीय एशिया की स्थिति से अपरिचित हैं, चीन के मामलों से अलग रहना चाहिये।" परराष्ट्र विभाग की एक विज्ञप्ति में जापान सरकार ने अपने आशय को और स्पष्ट किया :—"पूर्वीय एशिया में शान्ति और व्यवस्था कायम करने के लिए हमें सिर्फ अपनी जिम्मेवारी पर ही काम करना चाहिये। ....चीन के अलावा और कोई देश ऐसा नहीं है, जिसके साथ मिल कर हम पूर्वीय एशिया में शान्ति स्थापन की जिम्मेवारी लें। ...... यदि कोई विदेशी राष्ट्र व्यक्तिशः या मिल कर चीन को टैकनिकल या आर्थिक सहायता देंगे, तो जापान इसे काफी राजनैतिक महत्व देगा। ...... जापान सिद्धान्त के तौर पर इस प्रकार की बातों पर सख्त ऐतराज करेगा।" वाशिंगटन के जापानी राजदूत एच० सैतो ने इसे और भी स्पष्ट किया—"जापान ही एकमात्र यह निश्चय कर सकता है कि चीन का हित किस में है। ...... चीन में कोई व्यापार या व्यवसाय करने से पहले व्यापारी टोकियो से सलाह मशविरा करेंगे, तो उन्हें विशेष लाभ होगा।"

ब्रिटेन की झूठी आशा

जापान की इतनी स्पष्ट चेतावनी होते हुए भी ब्रिटेन जापान से कुछ आशाएं बांध रहा था। नौ राष्ट्रों की सन्धि की समाप्ति

और चीन में केवल जापान के अधिकार की घोषणा का अमेरिका ने तीव्र विरोध किया, लेकिन नौ राष्ट्रों की सन्धि पर हस्ताक्षर करने वाले ब्रिटेन ने अपना मुंह नहीं खोला। सर जौन साइमन ने ३० अप्रैल १९३४ को हाउस आफ कामन्स में कहा—"सम्राट् की सरकार इस विशेष प्रश्न को यहीं छोड़ने में ही सन्तुष्ट है।" वस्तुतः ब्रिटेन को अब तक आशा थी कि जापान उसके हितों की उपेक्षा नहीं करेगा। इसी आशा से प्रेरित होकर लार्ड बैर्नबी के नेतृत्व में ब्रिटिश व्यवसायियों का एक मिशन मंचूको और टोकियो गया। जापान सरकार की खूब प्रशंसा की गई। लेकिन ब्रिटेन को मुंह की खानी पड़ी। मिशन को असफल होकर ब्रिटेन लौटना पड़ा। यह स्पष्ट हो गया कि मंचूको के दरवाज़े विदेशियों के लिए — अंग्रेजों के लिए भी बन्द हो चुके हैं। इस समय ब्रिटेन अत्यन्त आश्चर्य, विस्मय और भय के साथ अनुभव कर रहा था कि जापान राजनैतिक व आर्थिक दोनों क्षेत्रों में इंग्लैण्ड का सर्वप्रधान प्रतिद्वन्द्वी हो गया है तथा पूर्वीय एशिया, भारत और संसार के अन्य भागों में जापान के सस्ते माल ने इंग्लैण्ड का सारा व्यापार चौपट कर दिया है। चीन में तो वह प्रवेश ही नहीं करने देता। इसी समय जापान को इसका जवाब देने के लिए समस्त साम्राज्य में जापानी माल पर तटकर बहुत भारी मात्रा में लगा दिये गये। भारत में भी ये तटकर १०० फीसदी तक बढ़ा दिये गये थे। इसी समय ब्रिटेन को यह भी पता लगा कि न केवल मंचूको, परन्तु समस्त चीन के दरवाजे भी जापान अन्य

देशों के लिए बन्द करना चाहता है। इतना सब होने पर भी ब्रिटेन 'आशा बलवती राजन्' के अनुसार जापान से समझौते के मन्सूबे बांध रहा था। उसे यह विश्वास ही न होता था कि जापान अपने परम सहायक और शक्तिशाली राष्ट्र इंग्लैण्ड की उपेक्षा कर सकता है। उसे विश्वास था कि चीन को लूटने में जापान उसे भी साझीदार बना लेगा और यदि इसमें सफलता न हुई, तो ब्रिटेन नानकिंग सरकार से ही कोई स्वतन्त्र सन्धि कर कर लेगा। १९३५ के प्रारम्भ में चीन को जापान और ब्रिटेन की ओर से संयुक्त कर्ज देने का प्रस्ताव ब्रिटेन ने रखा। जापान के राजनीतिज्ञ चीन में ब्रिटिश सरकार का पैर पसारना पसन्द नहीं कर सकते थे, इसलिए उन्होंने ब्रिटेन को चेतावनी दी कि चीन से दूर रहो। लीथ रौस नामक अर्थ-विशेषज्ञ के नेतृत्व में जो मिशन टोकियो गया था, उसका वहां जरा भी स्वागत नहीं किया गया। उसके सामने ऐसी ऐसी अपमानजनक शर्तें रखी गयीं, जिन्हें ब्रिटेन कभी स्वीकार ही नहीं कर सकता था। एक शर्त यह थी कि ब्रिटेन यह स्वीकार करे कि चीन में जापान का ही एकमात्र अधिकार है। इस शर्त के अलावा यह भी शर्त पेश की गई कि ब्रिटिश साम्राज्य भर में जापानी माल पर कोई पाबन्दी न लगाई जाय। टोकियो से निराश होकर यह कमीशन नानकिंग पहुंचा। वहां उसने ब्रिटिश पूंजी की साख पर चीन की मुद्रा को नये सिरे से संगठित किया। यह जापान को जवाब था।

यह वह समय था, जबकि जापान और ब्रिटेन में असन्तोष बराबर बढ़ता जा रहा था। दोनों ओर की सरकारें यद्यपि चुप थीं, लेकिन राजनीतिज्ञ परस्पर संघर्ष की सम्भावनायें करने लगे थे। जापान ने वाशिंगटन कांफ्रेंस में ब्रिटेन और अमेरिका से सामुद्रिक शक्ति के सम्बन्ध ५ : ५ : ३ अनुपात रखने की जो सन्धि की थी, उसकी अवधि ३१ दिसम्बर १९३६ को समाप्त होती थी। ब्रिटेन ने इस सन्धि को अगले ५ सालों के लिए भी कायम रखने के लिए लगडन में कांफ्रेंस बुलाई थी, लेकिन जापान ने उसका भी बहिष्कार कर दिया। जापान ने १९३४ में ही सन्धि तोड़ कर बड़े बड़े नये जंगी जहाज बनाने शुरू कर दिये थे और अब तो सन्धि की मियाद खतम होने पर उसने डंके की चोट इधर कदम बढ़ाया। ब्रिटेन और अमेरिका भी पुनः शस्त्रीकरण की दौड़ में लगे। ब्रिटेन ने हांगकांग को, जिस पर अभी तक जापान से मित्रता होने के कारण उसने बहुत ध्यान नहीं दिया था, दृढ़ करने के लिए करोड़ों रुपये की एक योजना तैयार की। जापान और ब्रिटेन में परस्पर युद्ध छिड़ने की सम्भावनाएं की जाने लगीं। जापान के भू० पू० लैफ्टिनैण्ट कमाण्डर तोता इशिमारू ने 'निची ई हिसेन न रोन' (जापान ब्रिटेन से अवश्य युद्ध करेगा) नामक पुस्तक में लिखाः—"इंगलैंड की हालत गिर रही है और जापान चढ़ती कला पर है। दोनों में लड़ाई अनिवार्य है, क्योंकि इंगलैंड अपने पास की किसी चीज को छोड़ना नहीं चाहता और जापान को आगे बढ़ना तथा कुछ प्राप्त करना

है। इंगलैंड के पास बहुत अधिक विस्तृत प्रदेश है। वह उनमें से कुछ छोड़ सकता है। जापान के पास बहुत अपर्याप्त भूमिभाग है। उसके लिए यह जीवनमरण का प्रश्न है। इंगलैंड अपने रोबदाब का खयाल भूल कर और जापान से रियायतें करके इस संघर्ष को बचा सकता है। उदय होते हुये सूर्य के साम्राज्य को मंचूरिया और चीन में कार्य करने की पूरी स्वतन्त्रता होनी चाहिये तथा आस्ट्रेलिया में उसके लिए द्वार खुल जाने चाहिये, जहां वह अपना माल भेज सके और जहां जापानी जाकर बस सकें।......

"यदि ब्रिटेन वर्तमान समस्या की इन प्रारम्भिक बातों को भी न समझ सकेगा, तो जापान ब्रिटिश-साम्राज्य को कमजोर कर देगा, ब्रिटिश समुद्री ताकत को भी दुर्बल कर देगा और सात समुद्रों में बिखरी हुई ब्रिटेन की फौजी शक्ति पर हमला कर देगा। आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड जापानी विजय के पहले शिकार होंगे। हांगकांग भी जल्दी ले लिया जायगा। और फिर भारत की बारी है।"

इस पुस्तक के कुछ अध्यायों के शीर्षक निम्नलिखित थे—१—कल के मित्र और आज के दुश्मन, २— जापान पर इंगलैंड का दबाव, ३—क्या जापान इंगलैंड से लड़ेगा ? ४—अंग्रेजी जहाजी ताकत का जनाज़ा, ५—भूमध्यसागर या प्रशान्त महासागर, ६—सिंगापुर का जहाजी अड्डा, ७—इंगलैण्ड की कमजोरियां और ८—ब्रिटेन से डरने की जरूरत नहीं। यह पुस्तक जापान में इतनी अधिक लोकप्रिय हुई कि कुछ ही महीनों में इस

के ४० संस्करण निकल गये। जापान वस्तुतः ब्रिटेन से संघर्ष को अनिवार्य समझ कर पूरी तय्यारियां कर रहा था और उधर ब्रिटेन के राजनीतिज्ञ अभी तक इसका निश्चय न कर पाये थे कि जापान के साथ युद्ध करने में अधिक लाभ है या समझौते में। दोनों पक्ष थे और ब्रिटिश सरकार स्वयं दुविधा में थी। इसी किंकर्त्तव्यविमूढ़ता का जापान ने लाभ उठाया और चीन में बढ़ना जारी रखा।

नई कठपुतली सरकार

१९३३ ई० में जेहोल लिया जा चुका था तथा टांगकू सन्धि के अनुसार मंचूको और उत्तरी चीन के प्रदेश को असैनिक प्रदेश करार दिया जा चुका था, जिससे वहां चीन की सेनाएं प्रवेश न कर सकें। १९३४ में जापान ने यह घोषणा की थी कि किसी भी अन्य राष्ट्र को जापान के बिना पूछे चीन को कर्ज देने का अधिकार नहीं है। १९३५ में जापान और आगे बढ़ा। उत्तरी चीन के सेनापति को युद्ध की धमकियां देकर उससे एक नया समझौता किये जाने का षड्यन्त्र शुरू किया गया। अभी समझौते की अन्तिम शर्तें तय न हो पाई थीं कि वह भाग कर नानकिंग आ गया। सन्धि-चर्चा रास्ते में ही रह गई। इसलिए उस समझौते की कोई कानूनी कीमत न थी, लेकिन जापान ने उसी को आधार मान कर पीपिंग के दक्षिण पश्चिम में चीनी सेना के आने को सन्धि-भंग समझा और होपेई व चहार में फौजें भेज

दीं। १६३५ के अन्त में मंचूको की तरह उसने यहां भी कठपुतली राज्य बनाने का प्रयत्न किया। जनरल सुंग चि युआन के नेतृत्व में इस प्रान्त के शासन के लिए एक कौंसिल भी बना दी गई। जापान ने कहा कि पीपिंग तिन्तसिन प्रदेश अर्धस्वतन्त्र राज्य है और इसका शासन उक्त कौंसिल करेगी। लेकिन चीन सरकार ने इस स्थिति को कभी स्वीकार नहीं किया। इन्हीं दिनों जापानी सेना के बल पर असैनिक प्रदेश में एक नया कठपुतली राज्य कायम किया गया, मंगोलिया के चहार प्रान्त में भी एक छोटा सा राज्य कायम किया गया, जो सीधा जापानी सेना के प्रभाव में था।

१६३६ में जापान ने अपने पैर और भी ज्यादा पसारने शुरू किये। बाक्सर समझौते के अनुसार जापान ने पीपिंग तिन्तसिन क्षेत्र में कुछ सेना रखी हुई थी, अब वह एकदम बढ़ा दी गई। अन्य राष्ट्रों की सम्मिलित सेना से भी अधिक जापानी सेना वहां रहने लगी। इसी समय जापान ने उत्तरी चीन में व्यापार के नाम से इतनी गड़बड़ी फैला दी कि चीन सरकार परेशान हो गई। जापानी सैनिक अधिकारियों की सहायता से जापानी और कोरियन व्यापारी बिना चुंगी दिये धड़ाधड़ चीन में माल भेजने लगे। चीनी अधिकारी कुछ कर न सकते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि चीनियों और जापानियों में कहीं कहीं मुठभेड़ें भी होने लगीं और कुछ जापानी मारे भी गये।

जापान के नये प्रधानमन्त्री हिरोता ने इन्हीं दिनों अपनी

चीन-सम्बन्धी नीति की व्याख्या करते हुए निम्नलिखित तीन प्रसिद्ध मांगें पेश की थीं। (१) कम्यूनिज्म के विरुद्ध चीन और जापान का पारस्परिक सहयोग (२) जापान की अनुमति के बिना चीन और किसी राष्ट्र से कोई सम्बन्ध न रखे, (३) चीन, मंचूको तथा जापान का एक आर्थिक संघ की तरह से संगठन। इन मांगों का अर्थ स्पष्ट था कि नानकिंग सरकार जापान के प्रति आत्मसमर्पण कर दे और इसके बदले उसे प्रलोभन दिया गया था कि रूस व चीन के कम्यूनिस्टों का दमन करने में जापान उसे पूरी सहायता देगा, लेकिन जापान को उस समय क्या मालूम था कि चीन के राष्ट्रीय और प्रजातन्त्र दल जापान के विरुद्ध स्वयं मिलने वाले हैं। वे दोनों दल कैसे मिले, यह हम पहले चुके हैं। अब जापान के लिए और प्रतीक्षा करना असम्भव था। अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति भी उसके अनुकूल थी। अबीसीनिया-विजय के सिलसिले में राष्ट्रसंघ की नपुंसकता एक बार और जगजाहिर हो चुकी थी। इटली और जर्मनी ने यूरोप में ही ऐसी समस्यायें पैदा कर दी थीं कि यूरोप उनमें बुरी तरह उलझा हुआ था। रूस भी जर्मनी के कारण पूर्व में ध्यान न दे सकता था।

सोलहवां अध्याय

चीन का नवीन आक्रमण

७ जुलाई १९३७ को चीन व जापान के इस महान युद्ध का सूत्रपात हुआ, जो अभी तक भी समाप्त नही हुआ और यह भी नहीं कहा जा सकता कि यह कब समाप्त होगा। अन्य अनेक युद्धों की भांति इसका भी प्रारम्भिक कारण बहुत छोटा-सा है। ७ जुलाई को पीपिंग (पुराना नाम पेकिंग)के समीप जापानी सैनिक चांदमारी की प्रैक्टिस कर रहे थे। इस सिलसिले में अधीरात के बाद इन सैनिकों ने अपने एक सिपाही के ढूंढ़ने के बहाने पीपिंग शहर में घुसना चाहा। इस शहर में प्रवेश करने का उन्हें कोई अधिकार न था। नगर के चीनी अधिकारियों ने जापानी सैनिकों को शहर

में घुसने की आज्ञा नहीं दी। जापानी इससे उत्तेजित होकर चीनी सिपाहियों पर हमला करने लगे। निदान चीनी सिपाहियों को भी अपने बचाव के लिए गोलियां चलानी पड़ीं। बस, जापान को चीन से युद्ध छेड़ने का बहाना मिल गया। जापानी सेना ने आक्रमण कर दिया। पहले तो ऐसा प्रतीत हुआ कि जापान इस बार कोई और प्रदेश छीन कर वहां कठपुतली राज्य कायम करना चाहता है, लेकिन यह युद्ध पिछली सब लड़ाइयों से बड़ा और भीषण होने वाला था। जापान चीन के दो बलशाली दलों में होती हुई एकता को बहुत भय से देख रहा था। इसलिए उसने इस वार एकबारगी चीन की समस्या को हल करने का निश्चय कर लिया। पीपिंग में लड़ाई हो ही रही थी। शांघाई में दो एक जापानी सैनिकों की हत्या के कारण वहां भी अगस्त में लड़ाई शुरू हो गई। जापान के प्रधान मन्त्री प्रिंस फुमीमारो कोनोये (Prince Fumimaro Konoye) ने एक भाषण में कहा था--"जापान के लिए सबसे उत्तम मार्ग यही है कि चीन को इतना कुचल दिया जाय कि वह फिर सिर ही न उठा सके।" जहां यह निश्चय हो, वहां बहाना मिलने में क्या देर हो सकती थी ? बहाना मिलते ही जापानी सेना हवाई और समुद्री जहाजों पर लद कर चीन आने लगी।

यह युद्ध अभी तक समाप्त नहीं हुआ, इसलिए इसके बारे में कुछ निश्चित रूप से लिखना कठिन है। फिर भी यहां युद्ध की दो चार बड़ी-बड़ी बातें बता देना अनुचित न होगा। इस

समय यह युद्ध तीन क्षेत्रों में बटा हुआ है। पहला क्षेत्र है तिंतसिन पूकौ रेलवे और लुंघाई रेलवे। पहली रेलवे अनेक खनिजप्रधान प्रान्तों से उत्तर व दक्षिण की ओर जाती है, तो दूसरी रेलवे सिआन फु से पश्चिम व उत्तर की ओर जाती है। युद्ध का दूसरा क्षेत्र २५० मील दूर पश्चिम में लुंघाई और पेकिंग-हैंको रेलवे के जंकशन के पास है। तीसरा युद्ध-क्षेत्र बहुत दूर शांसी में है। इन सभी दिशाओं में जापान दक्षिण की ओर बढ़ रहा है। जापान को पहले सात आठ महीनों में काफी सफलता हुई और उसने बहुत से प्रदेश पर अधिकार कर लिया। यद्यपि उसका प्रधान उद्देश्य समस्त चीन पर अधिकार करना था, तथापि उसने जिस जिस क्षेत्र में युद्ध शुरु किया, उसे देखते हुये प्रतीत होता है कि जापान के सैनिक विभाग के तत्कालीन उद्देश्य निम्न-लिखित थे :—

(१) कालगन पर अधिकार करके वह रूस व चीन के पारस्परिक यातायात के मार्ग को बन्द कर देना, जिससे रूस से सहायता प्राप्त करना चीन के लिए असम्भव हो जाय।

(२) चीन के समस्त समुद्री तट पर घेरा डाल कर उसके बन्दरगाहों पर अधिकार कर लेना। इससे नानकिंग सरकार की तटकरों से होने वाली भारी आमदनी मारी जायगी।

(३) चीन के अन्तरीय प्रदेश में हवाई बम-वर्षा द्वारा इतना आतंक फैला देना कि तुखनों व प्रान्तीय शासकों को केन्द्रीय सरकार को सहायता देने में भय प्रतीत हो। और

(४) होपेई, चहार, सुइ युश्रान, शांसी और शान्तुंग पर अधिकार कर लेना, ताकि उनका नानकिंग से सम्बन्ध-विच्छेद पूर्ण हो जाय, जो पहले प्रयत्न करने पर भी पूर्णतया सफल न हुआ था। इससे जापान के हाथ में शांसी की कोयले और लोहे की बड़ी-बड़ी खानों व दक्षिण के रुई उपजाने वाले ज़िले भी आ जायेंगे।

युद्ध की नृशंसता

जापान ने इस युद्ध में उन तमाम बर्बरताओं, क्रूरताओं और हिंसात्मक साधनों से काम लिया है, जो भी विज्ञान की सहायता से सिद्ध हो सकते थे। एक क्षण में हज़ारों की जान लेने वाले भयंकर से भयंकर गैस-बमों का इस युद्ध में प्रयोग किया जा रहा है। भिन्न-भिन्न प्रकार की ज़हरीली गैसें जापान तय्यार कर रहा है। कुछ गैसें इस प्रकार की हैं, जिन से दम घुटने लगता है और फेफड़े कट-कट कर खून के साथ निकलने लगते हैं। मस्टर्ड गैस ज़मीन पर धुंए के समान फैल जाती है और जिस चीज़ में लग जाती है, तत्काल जल उठती है, मांस और फेफड़े तक झुलस जाते हैं और अन्त में आदमी भी खतम हो जाता है। टैंक, मशीन-गन, एण्टी एयर क्रेफ्ट गन तथा डिस्ट्रायर आदि का खुला प्रयोग हो रहा है। नृशंसता, क्रूरता का नंगा नाच जापानी कर रहे हैं। हज़ारों गांव नष्ट हो गये हैं, सैकड़ों मील की फसलें तबाह हो गई हैं। बड़े-बड़े प्राचीन शहरों की भव्य

ऐतिहासिक स्मृतियां, पुस्तकालय और हस्पताल नष्ट कर दिये गये हैं। लाखों चीनी नागरिक आबाल-वृद्ध — गोद के दूध पीते हुए बच्चे या खेलते हुये बच्चे और प्रसव करती हुई युवतियां तथा लाठी टेक कर चलते हुए बूढ़े, सब बिना किसी भेद-भाव के जापानी नरसंहारक तोपों और भारी बमों से खतम किये जा रहे हैं।

हैंको से श्री० पाल आर सुंग ने मई १९३८ के पत्र में जापान की निम्न क्रूरताओं का उल्लेख किया है:—

"५५ दिनों में बेघरों के कैम्प से भी १०,००० से अधिक चीनी प्रजा, जिस ने युद्ध में कोई भाग न लिया था, जापानियों द्वारा बन्दी बनाई जाकर उड़ा ली गई और गोली के घाट उतार दी गई।.........नानकिंग पर कब्जा करने के बाद तीन या चार दिन के भीतर जापानी सैनिकों ने दो से तीन हजार तक चीनी स्त्रियों और युवतियों पर बलात्कार किया।...... जापानी साम्राज्यवाद की इस बर्बर करनी के कारण एशिया के एक भूभाग का एक बड़ा अंश जीवित नरक में परिणत हो गया है। जापानी सैनिकों द्वारा मारे गये चीनी नागरिकों की संख्या कम से कम ८ करोड़ है, जिस का पांचवां हिस्सा अर्थात् एक करोड़ ६० लाख अबोध शिशु और कम उम्र के बालक थे। जापानी आक्रमण की कई एक लहरों के कारण बेघरे लोग देश भर में फैल गये हैं और बहुत से वूचुङ्, हांकाऊ तथा हानपाङ् नगरों में आ जुटे हैं, जहां उनकी दशा अत्यन्त दयनीय है। इन अनाथों की दारुण यातना

देखकर कोई भी सहृदय प्राणी द्रवित हुए बिना नहीं रह सकता।"

चीनप्रवासी एक फ्रांसीसी सज्जन के कथनानुसार जापानी हवाई जहाज अभी तक नित्य सैकड़ों नागरिकों की बमों द्वारा हत्या करते हैं। नगर लूटे जा रहे हैं। लगातार कई दिन तक हत्या, लूटपाट और बलात्कार करने के बाद वे व्यवस्था करते हैं। ......शरणागत सैनिकों को भी गोली मार दी जाती है। कभी कभी चांदमारी या संगीनों के अभ्यास के लिये भी उन्हें काम में लाया जाता है। बहुत से शरणागत चीनी सैनिकों को बांध कर जला दिया गया। ......कैम्प में भी स्त्रियों पर बलात्कार किया जाता है। कभी-कभी एक दर्जन और किसी अमेरिकन द्वारा देखी गई घटना में तीस जापानी सैनिकों ने एक स्त्री पर बलात्कार किया। बहुधा बलात्कार के बाद धर्षित स्त्रियों को बोटी बोटी कर दिया जाता है। इस समय पेइपिङ् और हाङ्चाउ प्रदेशों में सकड़ों गांव जलाये जा रहे हैं। जलते गांवों से भागने वालों को गोली से उड़ा दिया जाता है।"

मिस म्यूरियल लिस्टर एक पत्र में लिखती हैं — "नगर में प्रवेश करते हुए बीभत्स दृश्य दीखता है। जापानी पुरुष चीनी युवतियों के शरीर टटोलते हैं, किन्तु तलाशी का अधिकार और उसका यह ढंग पूर्व की ईजाद नहीं है। ...... एक आदमी को ग्यारह और व्यक्तियों के साथ बांध दिया गया। उन पर मशीनगनें दागी गईं और फिर पैट्रौल डाल कर जला दिया गया।"

इस नृशंस युद्ध का असर भी काफ़ी हुआ। पहले सात आठ मास तक जापान ने काफी प्रदेश विजय कर लिया और राजधानी नानकिंग तक पर जापान का अधिकार हो गया। लोग खयाल करने लगे कि जापान की विजय निश्चित है। लेकिन मार्च में आने वाले समाचारों से ज्ञात होता है कि तिन्तसिन पूको रेलवे की ओर जापानियों की वृद्धि न केवल रुक गई है, लेकिन उन्हें पीछे भी हटना पड़ा। कई शहरों पर चीन ने फिर अधिकार प्राप्त कर लिया है, पर अभी से कुछ कहना कठिन है। युद्ध में कभी आगे और कभी पीछे चलता ही रहता है।*

दोनों का बलाबल

इस युद्ध का क्या अन्त होगा, यह भी अभी से कहना बड़े

* इस पुस्तक के छपते छपते तक युद्धक्षेत्र की परिस्थिति बदल गई है और जबतक यह पुस्तक पाठकों के हाथ में पहुंचेगी, इसमें और भी परिवर्तन हो चुका होगा। इन पंक्तियों के लिखने तक तीन क्षेत्रों में युद्ध न होकर सिर्फ एक ही क्षेत्र में — यांग्त्सी नदी द्वारा हैंकों की, जो चीन की नई राजधानी है, ओर हो रहा है। चीन की हाल की ही (जून १९३८) भीषण बाढ़ ने जापान की युद्धनीति पर भारी प्रभाव डाला है, जिससे जापान को अपना उत्तरी चीन का युद्धक्षेत्र छोड़ देना पड़ा है। जापानी अधिकारियों का कहना है कि चीनी सेना ने स्वयं ही नदियों के बांध तोड़ कर यह जलप्रलय किया है।

साहस का काम है। हां, चीन और जापान के बलाबल पर एक नज़र डाली जा सकती है।

जापान के पास सब से बड़ा बल है उसकी सुशिक्षित, संगठित और बहादुर सेना व युद्ध की नवीन से नवीन संहारक सामग्री—बमवर्षक हवाई जहाज, तोपें, टैंक आदि। वह अधिकांश युद्ध सामग्री स्वयं ही तैयार करता है, मंचूको की सारी सेना भी उसी के हाथ में है और इस तरह चीनियों को ही चीनी सेना के मुकाबले में वह खड़ा कर रहा है। समस्त जापानी साम्राज्य — कोरिया, फारमोसा, सखलिन, क्वांगटुंग तथा आदेशप्राप्त द्वीपों की जन-संख्या ९,९४,५६,२६२ है, जबकि चीन की जन-संख्या ३७,००,००,००० है, लेकिन इसमें मंचूरिया तथा जापान द्वारा अधिकृत चीनी प्रदेश की जनसंख्या निकालने से चीन की जन-संख्या करीब १२-१३ करोड़ कम हो जाती है और जापान का जनबल बढ़ जाता है। परन्तु फिर भी चीन का जनबल जापान की अपेक्षा बहुत अधिक करीब दुगना रह जाता है और फिर मंचूरिया तथा अन्य चीनी प्रदेश की सेना पर जापान पूर्णतः विश्वास भी नहीं कर सकता। अभी कुछ महीने पूर्व समाचार मिला था कि मंचूरिया की एक चीनी सेना में विद्रोह हो गया है। इस प्रदेश में जिस दिन भी जापान के विरुद्ध विद्रोह उत्पन्न हो जायगा, जापान के लिए तीव्र समस्या उत्पन्न हो जायगी। अबतक भी जापान मंचूरिया से बहुत कम लाभ उठा सका है। फ्रैंक ए० हैज के कथनानुसार "मंचूरिया-विजय अबतक भारी

असफलता सिद्ध हुई है। इस पर अबतक जापान को भारी धन-राशि व्यय करनी पड़ रही है और जापान की दरिद्र जनता पर मंचूको एक भारी भारस्वरूप हो गया है।"

जापान को जहां यह भारी लाभ है कि वह स्वयं शस्त्रादि बना सकता है, वहां उसके लिए एक बड़ी भारी बाधा भी है। उसे कपड़े आदि के लिए कच्चा माल बाहर से मंगाना पड़ता है, वहां युद्धोपयोगी सामग्री के लिए भी उसे अन्य देशों का मुंह ताकना पड़ता है। लोहा, कोयला, तेल उसके पास बहुत कम हैं। 'लोहा और खून' का नारा लगाने वाले राष्ट्र के पास इन चीजों का होना अनिवार्य है। जापान के पास ऊन, नाइट्रेट, पारा, निकल, राल. आदि भी नहीं हैं, लेकिन उसके पास तांबा, टिन, सीसा, नमक आदि ज़रूर हैं।

जापान युद्ध-सामग्री न केवल स्वयं बना सकता है, बल्कि युद्धक्षेत्र में अपने जहाजों द्वारा भेज भी सकता है, लेकिन चीन को यह सुविधा नहीं है। उसे तो अपनी युद्धसामग्री बाहर से मंगानी पड़ेगी। उसके सब बन्दरगाहों पर जापान ने अधिकार कर लिया है। वह हांगकांग, मकाओ आदि विदेशियों द्वारा अधिकृत बन्दरगाहों द्वारा युद्ध-सामग्री मंगा सकता है, लेकिन वे वास्तविक युद्धक्षेत्र से बहुत दूर पड़ते हैं।

यद्यपि अन्तर्राष्ट्रीय लोकमत चीन के साथ है, तथापि अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति जापान के पक्ष में है। राष्ट्रसंघ अत्यन्त निर्बल है, वह जापान के विरुद्ध कोई कदम उठा नहीं सकता। ब्रिटेन

का साम्राज्य इतना बड़ा है और उसकी नींव इतनी कमजोर हो गई है कि ब्रिटेन किसी भी नई उलझन में पड़ कर अपने साम्राज्य को खतरे में डालना नहीं चाहता। रूस चीन की सहायता का (अपने स्वार्थ के लिए सही) इच्छुक होते हुए भी कुछ कर नहीं पाता। पश्चिम में जर्मनी और इटली का भय उसे काफी है। उसकी आन्तरिक अवस्था भी ऐसी नहीं है कि वह निश्चिन्त होकर बाहर ध्यान दे सके। रूस के बड़े-बड़े जिम्मेवार उच्चाधिकारी राजद्रोह के षड्यन्त्र के अभियोग में मारे जा रहे हैं। समस्त रूस में आतंक का राज्य कायम है। पूर्वीय एशिया में दिलचस्पी लेने वाला तीसरा राष्ट्र संयुक्त राष्ट्र अमेरिका है। शुरू में तो वह जापान के विरुद्ध बहुत गरजा, लेकिन इंगलैंड के बिना वह भी कुछ कर सकने में असमर्थ है। हां, ब्रिटेन, रूस और अमेरिका की ओर से चीन को शस्त्रास्त्र और हवाई जहाज काफी संख्या में मिलने लगे हैं और इन्हीं के बल पर वह ८—९ मास के बाद फिर जीतने लगा है। जर्मनी और इटली का सहयोग जापान को प्राप्त है। यह सहयोग प्रत्यक्ष रूप से सहायक न होकर भी अप्रत्यक्ष रूप से जापान के लिये बहुत लाभप्रद सिद्ध हो रहा है। इन दोनों देशों ने यूरोप में रूस और ब्रिटेन को काफी परेशान कर रखा है और यही कारण है कि वे पूर्व में उलझने का नाम नहीं लेते, लेकिन अप्रैल १९३८ में ब्रिटेन ने इटली से समझौता कर लिया है और इसलिए वह यूरोप की जटिल समस्याओं से कुछ निश्चिन्त होकर पूर्व की ओर शायद् ध्यान दे सके।

अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के अनुकूल होने पर भी जापान की आन्तरिक परिस्थिति उस के लिए विषम है। हम पहले कह चुके हैं कि जापान में कुछ एक भूस्वामियों और कुलीन वंशों के हाथ में ही सारी सत्ता है। वहां पूंजीवाद चरम सीमा तक पहुंचा हुआ है। ७० फी सदी व्यवसाय सिर्फ १५ कम्पनियों के हाथ में है। जापान की युद्ध नीति का निर्धारण भी यही पूंजीपति करते हैं। येन की कीमत वहां बहुत गिरी हुई है। मज़दूरों को बहुत कम मज़दूरी दी जाती है, इसीलिए यह भी सोचा जाता है कि अनाज आदि भी महंगे न होने पावें और इसका परिणाम वहां के किसानों को भुगतना पड़ता है। इसलिए वहां के किसानों व मजदूरों में जापानी पूंजीपतियों के विरुद्ध अत्यन्त असन्तोष है। युद्ध के कारण भी वहां टैक्स बढ़ाये जा रहे हैं, नये भारी-भारी कर्ज़ लिये जा रहे हैं। यह असन्तोष अपनी चरम सीमा पर पहुंचा हुआ है और न जाने यह किस दिन विद्रोह के रूप में फूट जाय। १९३४-३५ में दुर्भिक्ष पड़ने के समय किसानों ने विद्रोह कर भी दिया था। कई जगह दंगे हुए, किंतु केन्द्रीय नेतृत्व के अभाव में यह व्यापक न हो सके और पुलिस द्वारा दबा दिये गये। यदि जापान की पराजय के कुछ भी लक्षण दीखने लगे, तो यह विद्रोह बहुत जल्दी खड़ा होकर जापान के समस्त शासन-चक्र को उलट सकता है। सरकार की दमन-नीति के कारण अभीतक बाहरी दुनिया जापान के किसान-आंदोलन से अपरिचित है।

जापान की आर्थिक स्थिति भी बहुत अच्छी नहीं है। मंचू-

रिया, जेहोल आदि के आक्रमणों ने उसके आर्थिक जीवन की बहुत बुरी हालत कर दी है। इस समय जापान पर करीब ६६ अरब येन अर्थात् १६ अरब डालर कर्ज है, जबकि उसकी कुल सुरक्षित सम्पत्ति ५० करोड़ येन से अधिक नहीं है। इस युद्ध के कारण उसका विदेशी व्यापार भी मारा जा रहा है। उसके कुल निर्यात का छठा भाग चीन जाता था, वह अब बन्द हो गया है। युद्धोपयोगी सामान तैयार करने में लग जाने के कारण उसका अन्य देशों से व्यापार भी नष्ट हो रहा है। ३१ जुलाई सन् १६३७ तक विदेशी व्यापार का बैलेंस ७२ करोड़ येन तक उसके प्रतिकूल हो चुका था। रोमांरोलां, बर्टारण्ड रसल, अल्बर्ट ईंस्टीन आदि विश्वप्रसिद्ध विचारकों तथा राष्ट्रीय नेताओं की अपील पर अनेक राष्ट्रों में जापानी माल के बहिष्कार का आन्दोलन भी उठ खड़ा हुआ है। यदि जापान इस युद्ध में जीत गया, तो चीन की प्राकृतिक सम्पत्तियों पर अधिकार करके वह इस हानि को पूरा कर लेगा, लेकिन यदि इस बार भाग्य ने साथ न दिया, तो उसका अन्त अत्यन्त ही निकट है। इसीलिए वह जान की बाजी लगा कर इस युद्ध में तुल पड़ा है।

चीन में

उधर चीन के लिए भी यह युद्ध जीवन-मरण का प्रश्न है। समस्त चीन में राष्ट्रीयता की लहर फैल गई है। कम्यूनिस्ट चीन और नानकिंग सरकार के परस्पर मिल जाने से चीन अब पहले

का सा — मंचूरिया आक्रमण के समय का सा चीन नहीं रहा। अब वहां सब चीनी मिल कर चीन की रक्षा करने में प्राणपण से जुट गये हैं। कोई सेनापति विद्रोह का नाम नहीं ले रहा। ऐसा प्रतीत होता है कि चीन में कभी गृहयुद्ध होते ही न थे। चीन की प्रजा की समस्त श्रेणियां युद्ध में अपनी मातृभूमि की रक्षा करने के लिए हर प्रकार का बलिदान करने के लिए उद्यत हैं। समस्त चीन में युद्ध और मातृभूमि की रक्षा का नाद गूंज रहा है। बड़े-बड़े लेखक और कवि, नाटककार और उपन्यास लेखक अन्य सब विषयों को छोड़ कर युद्ध की चर्चा कर रहे हैं। युद्ध तथा अन्य सम्बद्ध समस्याओं पर सैकड़ों हज़ारों पुस्तकें लिखी जा रही हैं। चीन के सब नाटकघरों व सिनेमागृहों में भी युद्ध-सम्बन्धी खेल दिखाये जा रहे हैं। जापानविरोधी युद्ध सहायक नाट्य समिति बहुत वेग से अपना प्रचार कर रही है। चीन के प्रसिद्ध लेखक चंग ताओ फन का 'हमारा पुराणा घर' हज़ारों बार खेला गया है। संसारप्रसिद्ध सियुंग फूसी भी युद्धसम्बन्धी नाटक लिख रहे हैं। अखबारों ने अपने नाम तक बदल लिये हैं। कुछ अखबारों के नाम हैं—'चीन को बचाओ', 'युद्धक्षेत्र', 'नई रक्षासीमा', 'संघर्ष', 'मातृभूमि', 'हमारा युद्धनाद', 'युद्ध का अर्थशास्त्र'। गरीबों के लिए हर एक शहर में दीवारी अखबार लिखे जाते हैं, जहां सैकड़ों लोग आ आ कर बड़े उत्साह से युद्ध के समाचार पढ़ते हैं। चीन की स्त्रियों और कुमारों में भी अपूर्व उत्साह है। श्रीमती चांग काई शेक ने स्त्रियों में भी जीवन फूंक दिया

है। वे स्वयं हवाई सेना की प्रमुख सेनापति हैं। सब जगह युद्ध की चर्चा है। चीन इस समय करोड़ों जिह्वाओं से युद्ध का नाद गुंजा रहा है। चारों ओर से प्रवासी चीनी बड़ी बड़ी रकमें सहायतार्थ भेज रहे है। यह जागृति चीन के पिछले दीर्घकालीन इतिहास में अभूतपूर्व है। वस्तुतः सोया हुआ दैत्य जाग उठा है और उसे जगाने का श्रेय है विदेशी राष्ट्रों और विशेष कर जापान को।

चीन युद्ध में गुरिल्ला युद्ध का आश्रय लेकर जापान को परेशान कर रहा है। चीन की युद्धनीति का सारांश यह है कि जापान को चीन के अन्तरीय प्रदेश में आने दो और युद्ध को बहुत लम्बा खींचो। उसे विश्वास है कि जापान का राजनैतिक और आर्थिक भवन बहुत अधिक भार बरदाश्त नहीं कर सकता, वह किसी भी दिन चकनाचूर हो सकता है, किसी भी दिन जापान की पीड़ित और दरिद्र प्रजा विद्रोह कर सकती है। चीन उस दिन की प्रतीक्षा कर रहा है। अभी नहीं कहा जा सकता कि चीन का आशावाद सफल होगा या नह , लेकिन यदि हुआ तो दर असल संसार के इतिहास में भारी क्रान्ति होगी।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भविष्यवाणी करना साहस का काम है। यदि जापान जीत गया या चीन जीत गया, तो अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर क्या प्रभाव पड़ेगा, यह कहना भी इतिहासलेखक के अधिकार से बाहर की बात है। फिर भी यह कल्पना की जा सकती है कि जापान के विजय का अर्थ होगा

ब्रिटिश साम्राज्य की दुर्बलता। जापान चीन के विशाल साधनों का उपयोग पूर्वीय ब्रिटिश साम्राज्य के विजय के लिए करेगा। परन्तु उसके साथ ही वह (जापान) रूस, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और ब्रिटेन की आंखों में बुरी तरह गड़ जायगा और उसे इनका सामना करने की तैयारी भी करनी पड़ेगी। इसका परिणाम एक महान् विश्वव्यापी महासमर होगा।

यदि चीन जीत गया, तो जापान में बोलशेविक क्रान्ति का आना बहुत सम्भव है और स्वयं चीन में भी कम्यूनिस्टों का प्रभाव बहुत बढ़ जायगा। चीन और जापान की यह क्रान्ति संसार के अन्य साम्राज्यवादी देशों पर कम असर न डालेगी। ब्रिटेन यद्यपि जापान के पराजय से प्रसन्न होगा, लेकिन वह चीन के प्रकर्ष को भी सहन नहीं करना चाहता, क्योंकि स्वतन्त्र, समर्थ और कम्यूनिस्ट चीन का अर्थ है सुदुर पूर्व में ब्रिटेन की महत्वाकांक्षाओं का नाश। स्वतन्त्र चीन एशिया के अन्य राष्ट्रों के लिए भी आशा का दूत सिद्ध होगा और वे भी अपने कन्धे पर से विदेशी जुआ हटा कर फैंक देंगे। लेकिन यह सब चर्चा करना इन पंक्तियों के लेखक का काम नहीं है। जापान को 'उदीयमान सूर्य का देश' कहा जाता है। निकट भविष्य का इतिहास संसार को शीघ्र ही सूचना देगा कि उसका मध्यान्ह अभी हुआ है या नहीं?

परिशिष्ट—१

चीन की प्रमुख घटनाओं का तिथिक्रम

सन् ईस्वी	घटना
१७९६	अफीम-निषेध की घोषणा।
१८३९-४२	ब्रिटेन से पहला अफीम युद्ध – चीन हांगकांग ब्रिटेन को दे देता है, और कैण्टन आदि ५ बन्दरगाह विदेशियों के लिए खोल देता है।
१८५१	तेपिंग विद्रोह।
१८५४	शांघाई के चुंगीघर में विदेशी प्रबन्ध।
१८५६-६०	ब्रिटेन और फ्रान्स का चीन से युद्ध – तिन्तसिन की सन्धि।
१८६४	अमेरिका व ब्रिटेन की सहायता से तेपिंग का विद्रोह समाप्त।
१८८३-८५	अनाम पर फ्रांसीसियों की अधिकार-घोषणा और चीन से युद्ध व सन्धि।
१८८६	बरमा और तिब्बत के सम्बन्ध में चीन से सन्धि।
१८८७	पुर्तगाल का मकाओ पर अधिकार।
१८९१	ईसाई पादरियों के विरुद्ध यांग्त्सी घाटी में दंगे।
१८९४	कोरिया के प्रश्न पर जापान का चीन से प्रथम युद्ध।

१८९५ शिमोनोस्की की सन्धि - कोरिया ने स्वतन्त्रता स्वीकार करना, जापान का फारमोसा आदि लेना।

१८९६ रूस को चीनी पूर्वी रेलवे बनाने का अधिकार।

१८९७ जर्मनी का सिंगताओ पर अधिकार।

१८९८ रियायतों के लिए युद्ध, जर्मनी ने ... याओ चाओ और रूस ने क्वांगटांग का पट्टा ... वाया, फ्रांस ने क्वांगचोआन लेना, ब्रिटेन ... वई हाई वई का पट्टा, राजमाता जू ... का शा... की बागडोर हाथ में लेना।

१८९९ रूस व ब्रिटेन की चीन को बांटने ... सन्धि।

१९००-०१ विदेशियों के विरुद्ध विद्रोह, रूस ... मंचूरिया पर आक्रमण - पेकिंग पर विदेशियों का आक्रमण और रक्तपात - पेकिंग की सन्धि।

१९०३ ब्रिटिश सेना का तिब्बत पर आक्रमण।

१९०४-०५ रूस जापान में युद्ध - जापान का पोर्ट आर्थर पर अधिकार - ब्रिटेन व जापान की मित्रता-सन्धि।

१९०५ डा० सनयात सेन की गुप्त समिति स्थापना।

१९१० जापान का कोरिया को हजम कर लेना।

१९११ चीन में क्रान्ति व प्रजातन्त्र की स्थापना - मंगोलिया की आज़ादी की घोषणा।

१९१२ कुओ मिन तांग की स्थापना-सम्राट् का गद्दीत्याग।

१९१३ युआन शिकाई का दमन और विद्रोह।

१६१५ जापान की २१ शर्तें – चीन की सन्धि ।

१६१६ दक्षिणी प्रान्तों में विद्रोह और युआन की मृत्यु ।

१६१७ शांतुंग के सम्बन्ध में जापान, फ्रांस, रूस और ब्रिटेन की गुप्त सन्धि ।

१६१६ शान्ति महासभा से चीन को निराशा – चीनी प्रतिनिधियों का हस्ताक्षर न करना ।

१६२१ सोवियट सेनाएं मंगोलिया में ।

१६२२ वाशिंगटन कांफ्रेन्स ।

१६२३ रूसी दूत जौफ़े की डा० सनयात से मुलाकात – कैंटन में अन्तर्राष्ट्रीय बेड़ा ।

१६२४ सोवियट रूस की चीन से पहली सन्धि ।

१६२५ डा० सनयात सेन की मृत्यु – ब्रिटिश सेना द्वारा चीनियों की हत्या – अंग्रेजी माल और हांगकांग का बहिष्कार ।

१६२७ चांग काई शेक की उत्तरी चीन को विजय यात्रा – कुओ मिन तांग व कम्यूनिस्टों में फूट ।

१६२८ राष्ट्रीय सेना का पेकिंग में प्रवेश – चांग काई शेक चीन के राष्ट्रपति – गृहयुद्धों की शृङ्खला ।

१६३१-३२ जापान का मंचूरिया पर आक्रमण और मंचूको राज्य की स्थापना ।

१६३३ जापान का जेहोल पर आक्रमण – तांगकू की सन्धि ।

१६३४ रूस का सिनकियांग में हस्ताक्षेप ।

१९३५	जापान का उत्तरी चीन में होपेई, शांतुंग, शांसी, व चहार को मिला कर नये कठपुतली राज्य की स्थापना का यत्न – रूस का चीनी पूर्वी रेलवे जापान को बेचना।
१९३६	चांग काई शेक का कम्यूनिस्ट-दमन, परन्तु स्वयं गिरफ्तारी।
१९३७	कम्यूनिस्टों का राष्ट्रीय सरकार को आत्मसमर्पण – गृहयुद्धों की समाप्ति – जापान का नया आक्रमण – नानकिंग पर जापान का अधिकार।
१९३८	युद्ध जारी। रूस द्वारा शस्त्रों की सहायता।

परिशिष्ट—२

चीन में विदेशियों की पूंजी

(लाख रुपयों में)

	व्यापार-व्यवसाय	सरकारी कर्ज	कुल	प्रतिशत
ब्रिटेन	२६७३	६२१	३२९४	४९
जापान	९९९*	६२१	१६२०	२४

* मंचूरिया में जापान की ३ अरब रु० की पूंजी लगी हुई है। अर्थात् चीन में उसकी कुल पूंजी ४ अरब ६२ करोड़ रुपये है।

सं. रा. अमेरिका	४३२	१२१.५†	५५३.५	८
फ्रान्स	२५६.५	२७०	५२६.५	८
बेल्जियम	१०८	१२५	२४३	४
जर्मनी	२०२.५	४०.५	२४३	४
इटली	१३.५	१२१.५	१३५	२
नीदरलैंड	२७	५४	८१	१
स्कैंडिनेविया	५.४	२.७	८.१	–
कुल योग	४७१६.६	१९८७.२	६७०४.१	

यह १९३१ की संख्यायें हैं, इसके बाद भी विदेशी पूंजीपतियों ने चीन में बहुत रुपया लगाया है। १९३७ तक का अनुमान यह है कि १० और १५ अरब रुपए के बीच में वहां विदेशियों की पूंजी लगी हुई है।

† सं० रा० अमेरिका ने नानकिंग को और भी बहुत सा कर्ज दिया है। ३० करोड़ रुपये के दो कर्ज देने की खबरें कुछ महीने पहले मिली हैं। इस तरह अमेरिका की चीन में लगी कुल पूंजी करीब ९० करोड़ रुपया हो जायगी।

सहायक पुस्तकों की सूची

१—Glimpses of the World's History — पं० जवाहरलाल नेहरू (हिन्दी अनुवाद)

२—Sunyat sen and the Chinese Republic — पाल लाइन बार्जर

३—China and the Powers — एच० के० नार्टन

४—The Revolt of Asia — अप्टन क्लोज़

५—The Problem of China — बरट्रायड रसेल

६—Japan Speaks — कावाकामी

७—China — एफ० सी० जोन्स

८—World Politics — पामदत्त

९—Modern Asia — गिब्बन्स (हिन्दी अनुवाद)

१०—चीन की राज्यक्रान्ति — सम्पूर्णानन्द

११—एशिया की क्रान्ति — सत्यनारायण शास्त्री

१२—साम्राज्यवाद — मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव

१३—संवत् २००० — भारतीय योगी

१४—India on China — राममनोहर लोहिया

१५—China & Japan (रा० इ० इण्टर्नैशनल अफेयर्स द्वारा)

करैण्ट हिस्ट्री, भूगोल (चीन अंक) तथा अन्य पत्र-पत्रिकाएं।